दो बहनें



दो वहनें

दो बहनें

शर्मिला

किसी-किसी पण्डित से सुना है कि स्त्रियाँ दो जाति की होती हैं।

एक जाति है प्रधानतः माँ की, दूसरी जाति है प्रिया की।

यदि ऋतुओं के साथ इनकी तुलना करनी हो, तो माँ है वर्षा ऋतु। वह जल देती है, फल देती है, ताप दूर करती है। आकाश से अपने को विगलित करके हमें देती जाती है, शुष्कता दूर करती है, अभाव को भर देती है, पूरा कर देती है।

और प्रिया है बसन्त ऋतु। गम्भीर है उसका रहस्य, मधुर है उसका मायामन्त्र। उसकी चंचलता रक्त में तरंगें उत्पन्न करती है और वे तरंगें चित्त के उस रत्नजटित कक्ष तक पहुंचती हैं जहां स्वर्णवीणा का एक निभृत तार नीरव पड़ा हुआ उस झंकार की प्रतीक्षा कर रहा है जिससे सम्पूर्ण देह और मन में अनिर्वचनीय की वाणी झंकृत हो-हो उठती है।

शशांक की स्त्री शर्मिला 'माँ' जाति की है।

बड़े-बड़े शांत नयन हैं, धीर-गभीर उनकी चितवन है। भीर-भरे

नवमेघ के समान भरी देह है–स्निग्ध, श्यामल। मांग में सिन्दूर की अरुण रेखा है। चौड़े काले पाड़ की साड़ी है, दोनों हाथों में मकर-मुखी मोटे दो कंगन हैं—उस आभूषण की भाषा शृंगार और प्रसाधन की भाषा नहीं, कल्याण और मंगल की भाषा है।

स्वामी के जीवन-लोक का कोई छोर ऐसा नहीं है जहां उसके शासन का प्रभाव शिथिल हो। स्त्री के अतिलालन की छाया में रहते-रहते पति का मन असावधान हो गया है। फाउण्टेनपेन ज़रा-सी भूल से यदि थोड़ी देर के लिए भी टेबल पर कहीं इधर-उधर हो जाए तो उसे ढूंढ़ देने की जिम्मेदारी स्त्री पर है। स्नान के लिए जाते समय शशांक ने अपनी कलाई की घड़ी उतारकर कहां रख दी, इसकी याद उसे नहीं रहती, पर स्त्री की आंख उसपर ज़रूर पड़ जाती है। जब दो पांव में अलग-अलग दो रंग के मोज़े पहने वह बाहर जाने के लिए तैयार होता तो स्त्री आकर उसकी गलती ठीक करती है। बंगला महीने के अंग्रेज़ी महीने की तारीख मिलाकर जब वह किसी तिथि को मित्रों निमन्त्रण दे देता है और असमय अप्रत्याशित अतिथि घर आ जाते हैं तो अचानक आ पड़ी वह ज़िम्मेदारी स्त्री को ही उठानी पड़ती है। शशांक अच्छी तरह जानता है कि उसकी दैनिक जीवन-यात्रा में यदि कहीं कोई भूल हुई तो उसकी स्त्री उसे सुधार लेगी, इसलिए कोई न कोई त्रुटि करते रहना उसका स्वभाव बन गया है। स्त्री स्नेहपूर्ण तिरस्कार के स्वर में कहती है, "अब और मुझसे न होगा। तुम्हें क्या कभी समझ न आएगी?" पर यदि शशांक को सचमुच समझ आ जाती तो शर्मिला के दिन फसलवाली जनहीन भूमि जैसे दुर्वह हो जाते।

आज शशांक किसी मित्र के घर दावत में गया है। रात के ग्यारह बज गए, बारह बज गए, ब्रिज का खेल चल रहा है। एकाएक मित्र हंस उठा, "देखो, तुम्हारा समन लेकर सिपाही आ पहुंचा। तुम्हारी अवधि पूरी हो गई।"

वही चिरपरिचित चाकर महेश आया है। पकी मूछें, पर सिर के बाल काले, बदन में मिर्जई, कंधे पर रंगीन गमछा, बगल में बांस की लाठी। मालकिन मा ने पता लगाने भेजा है कि बड़ा बाबू यहां हैं? माजी को भय है कि रात को अंधेरे में लौटते समय कहीं कोई दुर्घटना न घटे। साथ में एक लालटेन भी भेजी है।

शशांक विरक्त होकर ताश पटक देता है और उठ खड़ा होता है। मित्र कहते हैं, "आह! एक अरक्षित पुरुष प्राणी!" घर लौटकर शशांक स्त्री से जो बातें करता उनकी न तो भाषा स्निग्ध होती, न उसकी भंगी शांत होती। शर्मिला चुपचाप उसकी भर्त्सना सह लेती। क्या करे, उससे रहा नहीं जाता। वह अपने मन से इस आशंका को किसी प्रकार निकाल नहीं पाती कि उसकी अनुपस्थिति में सब प्रकार की संभव विपत्तियां स्वामी के रास्ते में षड्यन्त्र किए खड़ी हैं।

बाहर कोई आदमी आया हुआ है। शायद कोई काम की बात हो रही है। पर क्षण-क्षण मे अन्तःपुर से छोटी-छोटी चिटें आ रही हैं, "याद है कि कल तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं थी। आज जल्द खाना खाने आ जाना।" शशांक क्रोध करता है, फिर हार भी मान लेता है। बड़े दुःख के साथ एक बार उसने पत्नी से कहा था, "तुम्हारी दुहाई है! चक्रवर्ती-बाड़ी की गृहिणी की तरह तुम भी किसी देवी-देवता की शरण ले लो। तुम्हारा यह मनोयोग, मेरे प्रति इतनी चिंता मुझ अकेले के लिए बहुत ज्यादा है उसका कुछ भाग देवी-देवता को देने से उसका बोझ मेरे लिए सहज हो जाएगा। उनके साथ कुछ ज्यादती भी करोगी तो वे आपत्ति न करेंगे, किन्तु मैं दुर्बल मनुष्य हूं।"

शर्मिला बोली, "हाय-हाय, एक बार काकाजी के साथ मैं हरिद्वार गई तो थी, याद है तुम्हारी क्या हालत हुई थी?"

अवस्था कितनी शोचनीय हो गई थी, इसे अलंकृत भाषा में खुद शशांक ने एक दिन स्त्री को सुनाया था जानता था कि उस अत्युक्ति

नवमेघ के समान भरी देह है—स्निग्ध, श्यामल। मांग में सिन्दूर की अरुण रेखा है। चौड़े काले पाड़ की साड़ी है, दोनों हाथों में मकर-मुखी मोटे दो कंगन हैं—उस आभूषण की भाषा शृंगार और प्रसाधन की भाषा नहीं, कल्याण और मंगल की भाषा है।

स्वामी के जीवन-लोक का कोई छोर ऐसा नहीं है जहां उसके शासन का प्रभाव शिथिल हो। स्त्री के अतिलालन की छाया में रहते-रहते पति का मन असावधान हो गया है। फाउण्टेनपेन ज़रा-सी भूल से यदि थोड़ी देर के लिए भी टेबल पर कहीं इधर-उधर हो जाए तो उसे ढूंढ़ देने की जिम्मेदारी स्त्री पर है। स्नान के लिए जाते समय शशांक ने अपनी कलाई की घड़ी उतारकर कहां रख दी, इसकी याद उसे नहीं रहती, पर स्त्री की आंख उसपर जरूर पड़ जाती है। जब दो पांव में अलग-अलग दो रंग के मोजे पहने वह बाहर जाने के लिए तैयार होता है, तो स्त्री आकर उसकी गलती ठीक करती है। बंगला महीने के साथ अंग्रेज़ी महीने की तारीख मिलाकर जब वह किसी तिथि को मित्रों को निमन्त्रण दे देता है और असमय अप्रत्याशित अतिथि घर आ

तो अचानक आ पड़ी वह जिम्मेदारी स्त्री को ही उठानी

शशांक अच्छी तरह जानता है कि उसकी दैनिक जीवन-

यदि कहीं कोई भूल हुई तो उसकी स्त्री उसे सुधार लेगी,

लए कोई न कोई त्रुटि करते रहना उसका स्वभाव बन गया है। स्त्री स्नेहपूर्ण तिरस्कार के स्वर में कहती है, "अब और मुझसे न होगा। तुम्हें क्या कभी समझ न आएगी?" पर यदि शशांक को सचमुच समझ आ जाती तो शर्मिला के दिन फसलवाली जनहीन भूमि जैसे दुर्वह हो जाते।

आज शशांक किसी मित्र के घर दावत में गया है। रात के ग्यारह बज गए, बारह बज गए, ब्रिज का खेल चल रहा है। एकाएक मित्र हंस उठा, "देखो, तुम्हारा समन लेकर सिपाही आ पहुंचा। तुम्हारी अवधि पूरी हो गई।"

वही चिरपरिचित चाकर महेश आया है। पकी मूछें, पर सिर के बाल काले, बदन में मिर्जई, कंधे पर रंगीन गमछा, बगल में बांस की लाठी। मालकिन मां ने पता लगाने भेजा है कि क्या बाबू यहां हैं ? मांजी को भय है कि रात को अंधेरे में लौटते समय कहीं कोई दुर्घटना न घटे। साथ में एक लालटेन भी भेजी है।

शशांक विरक्त होकर ताश पटक देता है और उठ खड़ा होता है। मित्र कहते हैं, "आह ! एक अरक्षित पुरुष प्राणी !" घर लौटकर शशांक स्त्री से जो बातें करता उनकी न तो भाषा स्निग्ध होती, न उसकी भंगी शांत होती। शर्मिला चुपचाप उसकी भर्त्सना सह लेती। क्या करे, उससे रहा नहीं जाता। वह अपने मन से इस आशंका को किसी प्रकार निकाल नहीं पाती कि उसकी अनुपस्थिति में सब प्रकार की संभव विपत्तियां स्वामी के रास्ते में षड्यन्त्र किए खड़ी हैं।

बाहर कोई आदमी आया हुआ है। शायद कोई काम की बात हो रही है। पर क्षण-क्षण में अन्तःपुर से छोटी-छोटी चिटें आ रही हैं, "याद है कि कल तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं थी। आज जल्द खाना खाने आ जाना।" शशांक क्रोध करता है, फिर हार भी मान लेता है। बड़े दुःख के साथ एक बार उसने पत्नी से कहा था, "तुम्हारी दुहाई है ! चक्रवर्ती-बाड़ी की गृहिणी की तरह तुम भी किसी देवी-देवता की शरण ले लो। तुम्हारा यह मनोयोग, मेरे प्रति इतनी चिंता मुझ अकेले के लिए बहुत ज्यादा है उसका कुछ भाग देवी-देवता को देने से उसका बोझ मेरे लिए सहज हो जाएगा। उनके साथ कुछ ज्यादती भी करोगी तो वे आपत्ति न करेंगे, किन्तु मैं दुर्बल मनुष्य हूं।"

शर्मिला बोली, "हाय-हाय, एक बार काकाजी के साथ मैं हरिद्वार गई तो थी, याद है तुम्हारी क्या हालत हुई थी ?"

अवस्था कितनी शोचनीय हो गई थी, इसे अलंकृत भाषा में स्वयं शशांक ने एक दिन स्त्री को सुनाया था जानता था उस अत्युक्ति

से जहां एक ओर शर्मिला दुखी होगी, वहां उसे आनन्द भी होगा। तब वह कौन मुंह लेकर आज अपने ही उस अमित भाषण का खण्डन करे ! चुपचाप मान ही लेना पड़ा हो ऐसी बात नहीं। दूसरे दिन सुबह जब उसे सर्दी का कुछ आभास हुआ तो शर्मिला की कल्पना के अनुसार उसे दस ग्रेन कुनैन खानी पड़ी और तुलसीदल का रस मिली हुई चाय भी पीनी पड़ी। विरोध करने का मुंह ही नहीं रह गया था; क्योंकि इसके पहले एक बार ऐसी ही हालत में उसने आपत्ति की थी और कुनैन खाने से इनकार कर दिया था जिससे उसे ज्वर हो गया था और शशांक के इतिहास में यह बात अमिट अक्षरों से लिख दी गई थी।

घर में शशांक के आरोग्य और आराम के लिए शर्मिला सस्नेह जितनी व्यग्र रहती है, बाहर उसकी सम्मान-रक्षा के लिए भी उतनी ही सचेष्ट रहती है। एक दृष्टान्त याद आता है—

एक बार वह घूमने-फिरने नैनीताल गया था। रास्ते के लिए पहले ही स्थान रिजर्व करा लिया था। जंकशन पर गाड़ी बदलकर वह कुछ खाने-पीने के फेर में लग गया। लौटने पर देखा कि वर्दीधारी एक दुर्जन-सा लगनेवाला व्यक्ति उन्हें बेदखल करने की चेष्टा में है। स्टेशन-मास्टर ने आकर एक विश्व-विश्रुत जनरल का नाम लेकर कहा, "डब्बा उन्हींका है, भूल से दूसरा नाम लग गया है।" शशांक आंखें फाड़कर और सम्मान प्रदर्शित करते हुए अन्यत्र जाने का प्रबन्ध करने लगा। इसी बीच शर्मिला गाड़ी के दरवाजे के सामने आकर बोली, "मैं देखती हूं कि कौन हमें उतारता है ! बुला लाओ अपने जनरल को !" शशांक सरकारी कर्मचारी था और ऊपर वाले अधिकारियों के जाति-गोत्र वालों तक से बचकर चलने का अभ्यस्त था। उसने चिन्तित होकर कहा, "यह क्या कर रही हो ? और भी तो डब्बे हैं।" पर शर्मिला ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। अन्त में जनरल साहब रिफरेशमेण्ट रूम में खाना खाकर चुरुट पीते हुए आए, पर दूर से ही क्रुद्ध

स्त्री-मूर्ति देखकर हट गए। शशांक ने पत्नी से पूछा, "जानती हो कितना बड़ा आदमी था?" पत्नी ने कहा, "जानने की जरूरत नहीं। जो डब्बा हमारा है, उसमें वह तुमसे बड़ा नहीं है।"

शशांक ने सवाल किया, "यदि अपमान करता?"

शर्मिला ने जवाब दिया, "तुम्हारे रहते क्या करता?"

शशांक शिवपुर कालेज की शिक्षा समाप्त कर इंजीनियर हुआ है। घर के काम-काज मे वह चाहे जितना ढीला हो, पर नौकरी के काम में पक्का है। इसका मुख्य कारण यह है कि घर की [illegible] में स्त्री-ग्रह नहीं है, वहा दूसरा प्रचण्ड ग्रह है जिसे चलती भाषा मे 'बड़ा साहब' के नाम से पुकारा जाता है। जब शशांक डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर के पद पर स्थानापन्न के रूप मे कार्य कर रहा था तभी उसकी आसन्न उन्नति उल्टी तरफ घूम गई। योग्यता और अनुभव दोनों में कच्चा होते हुए भी जिस अंग्रेज युवक ने, अभी जिसकी रेख ही भिन रही थी, आकर उसका स्थान ले लिया। उसके अचिन्तनीय आविर्भाव मे था सबसे ऊंचे अधिकारी के सम्पर्क एवं सिफारिश का बल।

शशांक ने समझ लिया कि न ये अधिकारी को ऊपर के आसन पर बिठाकर भी वस्तुतः काम सब उसे ही करना होगा। उच्चाधिकारी ने उसकी पीठ ठोककर कहा, "वेरी सॉरी मजूमदार! यथाशीघ्र तुम्हें उपयुक्त स्थान दिया जाएगा।"

आश्वासन और सान्त्वना पाने पर भी यह बात मजूमदार को कड़वी लगी। घर लौटने पर छोटी-छोटी बातो को लेकर उसने खिट-खिट शुरू कर दी। एकाएक नजर पडी कि बैठक के एक कोने मे जाला लगा हुआ है। सहसा लगा कि चौकी पर पडा हरे रंग का ढक्कन आंखों में चुभ रहा है। बाहर के बरामदे मे झाड़ू लग रही थी, धूल उड़कर आने के कारण नौकर पर बिगड पडा। कुछ न कुछ धूल तो रोज ही उड़ती, पर उसका इस प्रकार बिगडना बिलकुल नया है।

अपने असम्मान की खबर उसने अपनी पत्नी को नहीं दी। सोचा,

दे उसके कान में बात पड़ेगी तो नौकरी के जाल में एक गांठ और
ड़ जाएगी; हो सकता है कि वह जाकर अधिकारियों से अमधुर भाषा
झगड़ ही बैठे। विशेषतः उस डोनाल्डसन पर तो वह बड़ी नाराज़
। एक बार जब वह सर्किट हाउस के बगीचे में बन्दरों का उत्पात
ान्त करने गया था तो उसकी बन्दूक के छर्रे से शशांक के सोला
ट में छेद हो गया। कोई दुर्घटना नहीं हुई, परन्तु हो तो सकती थी।
ोग कहते हैं, दोष शशांक का ही था। यह सुनकर डोनाल्डसन पर
उसकी नाराजी और बढ़ गई। नाराजी का सबसे बड़ा कारण तो
यह था कि जो गोली बन्दर का लक्ष्य करके छोड़ी गई थी वह शशांक
को लगी—इन दोनों को एक ही बात बताकर (यानी शशांक को भी
बन्दरों में गिनती करके) शत्रुपक्ष (डोनाल्डसन) हंस पड़ा था।

शशांक के पद-लाघव का समाचार उसकी पत्नी ने स्वयं पा लिया
था। स्वामी का रंग-ढंग देखकर ही उसने समझ लिया था कि उनकी
ुनिया में कहीं कोई कांटा उठ खड़ा हुआ है और उन्हें चुभ रहा है।
कारण जानने में देर नहीं लगी। वैधानिक आन्दोलन के रास्ते
ाह गई नहीं, गई संकल्प (सेल्फ-डिटर्मिनेशन) की तरफ। स्वामी
ा कहा, "अब और नहीं। अभी काम छोड़ दो।"

इस्तीफा देने पर शशांक के कलेजे में लगी हुई जोंक खुद गिर
जाती किन्तु उसकी ध्यान-दृष्टि के सामने था—निश्चित मासिक आय
का अन्तर्जल और पश्चिम दिगन्त में उभरी पेंशन की स्वर्णिम रेखा।

शशांकमौलि जिस वर्ष एम० एस-सी० की डिग्री के सर्वोच्च शिखर
पर पहुंचा उसी साल उसके श्वसुर ने शुभकर्म में विलम्ब न करके
शर्मिला से उसका विवाह कर दिया। धनी श्वसुर की सहायता से
उसने इंजीनियरिंग की परीक्षा पास की। उसके बाद नौकरी में भी
तेजी के साथ उन्नति के लक्षण देख राजाराम बाबू दामाद की भावी
सफलता के क्रम-विकास का निर्णय कर आश्वस्त हो गए। उनकी
कन्या ने भी आज तक कभी अनुभव नहीं किया कि कोई अवस्थान्तर

हुआ है। घर-गृहस्थी में कोई अभाव नहीं आया, इतना ही नहीं, बाप के घर की चाल-चलन भी यहां ज्यों की त्यों रही। कारण यह था कि इस पारिवारिक राज्य की समस्त व्यवस्था शर्मिला के ही अधिकार में थी। कोई संतान नहीं हुई और जान पड़ता है होने की आशा भी छूट गई है। स्वामी की समस्त आय उन्हीं के हाथ में आती है। कोई विशेष प्रयोजन उपस्थित होने पर घर की अन्नपूर्णा के आगे हाथ पसारने के सिवाय शशांक के लिए और उपाय नहीं है। असंगत होने पर मांग अस्वीकृत हो जाती और उसे सिर झुकाकर पत्नी का निर्णय मानना पड़ता। उसकी निराशा किसी दूसरी प्रकार मधुर रस से पूर्ण हो जाती।

शशांक बोला, "नौकरी छोड़ देना मेरे लिए कुछ नहीं है, परन्तु तुम्हारे बारे में सोचता हूं, तुम्हें ही कष्ट होगा।"

शर्मिला बोली, "उससे भी अधिक कष्ट तब होगा जब अन्याय को निगलते वक्त वह गले में अटक जाएगा।"

शशांक ने कहा, "काम तो करना ही चाहिए; गोद का छोड़कर बाहर कहां-कहां ढूंढता फिरूंगा?"

"उस ओर तुम्हारी दृष्टि नहीं पड़ती। तुम विनोद में जिसे अपनी नौकरी का 'बूचिस्तान' कहते हो, वह 'बलूचिस्तान' की मरु-भूमि के उस पार है। उसके बाहर जो विश्व-ब्रह्मांड है उसकी तो तुम कोई गिनती ही नहीं करते।"

"सर्वनाश! विश्व-ब्रह्मांड के विस्तार का क्या ठिकाना! उसकी राह-घाट का 'सर्वे' कौन करेगा? उतनी बड़ी दूरबीन किस बाजार में मिलेगी?"

"बहुत बड़ी दूरबीन तुम्हें खोजनी नहीं पड़ेगी। हमारे मथुरा दादा कलकत्ता के बड़े ठेकेदार हैं। उनके साथ साझेदारी का भाग करने से अपने दिन बीत जाएंगे।"

"साझेदारी वजन में असमान ही रहेगी। अप

रहेगा। सामर्थ्य से बाहर साझेदारी करने से इज्जत न रहेगी।"

"अपनी ओर कमी किस बात की है? तुम जानते हो कि मेरे नाम से बाबूजी ने जो धन बैंक में जमा करा दिया था, वह सूद के कारण बढ़ रहा है। भागीदार के सामने तुम्हें नीचा न देखना पड़ेगा।"

"यह कैसे हो सकता है! वह धन तो तुम्हारा है।" कहते हुए शशांक उठ खड़ा हुआ। बाहर लोग बैठे हुए थे।

शर्मिला ने स्वामी का पल्ला पकड़कर उन्हें बैठा लिया; बोली, "मैं भी तो तुम्हारी हूं।"

फिर बोली, "अपनी जेब से फाउण्टेनपेन निकालो। यह लो चिट्ठी का कागज, लिखो इस्तीफे का पत्र। बिना उसे डाक में डाले मुझे शान्ति न मिलेगी।"

"जान पड़ता है, मुझे भी शान्ति न मिलेगी।"

—लिख दिया इस्तीफा।

दूसरे दिन शर्मिला कलकत्ता चल दी। मथुरा दादा के घर गी। उलहना देते हुए कहा, "बहिन की खबर तो कभी लेते ही नहीं।" कोई प्रतिद्वन्द्वी स्त्री होती तो उत्तर देती, 'तुम भी तो नहीं लेतीं।' पुरुष के दिमाग में यह उत्तर आया ही नहीं। अपराध मान लिया। बोले, "सांस लेने को भी समय नहीं मिलता। मैं खुद हूं कि नहीं, यह भी भूल जाता हूं। फिर तुम लोग भी तो दूर-दूर रहते हो।"

शर्मिला बोली, "अखबार में देखा था कि मयूरगंज या मथुरागंज, कहीं पुल बन रहा है और वह काम तुम्हें मिला है। पढ़कर बड़ी खुशी हुई थी। तभी मन में आया कि जाकर मथुरा दादा को कांग्रेचुलेट कर आऊं।"

"जरा सब्र करो, बहिन। अभी समय नहीं आया।"

बात यह थी कि उस काम में नकद रुपया लगाने की आवश्यकता थी। एक मारवाड़ी सेठ के साथ भागीदारी की बात थी। बाद में मालूम हुआ कि उसकी जो शर्तें थीं उसमें मलाई सब उसके हाथ

ड़ेगी और इनके भाग्य में केवल कुछ सुर्चन रह जाएगी। इसीलिए गान बचाने की सोच रहे हैं।

शर्मिला ने झुंझलाकर कहा, "ऐसा कभी नहीं हो सकता। अगर साझेदारी ही करनी है तो हम लोगों के साथ करो। ऐसा काम तुम्हारे हाथ आकर निकल जाए तो बुरा होगा। अपने रहते मैं ऐसा होने नहीं दूंगी, तुम चाहे जो करो।"

इसके बाद लिखा-पढ़ी होने में देर नहीं लगी। मथुरा दादा का हृदय भी विगलित हो गया।

काम तेजी से चलने लगा। इसके पहले नौकरी की जिम्मेदारी लेकर शशांक ने काम किया है। उस जिम्मेदारी की एक सीमा थी। मालिक बाहर के थे। देने-पावने में सामंजस्य था। अब अपना ही प्रभुत्व अपने को चलाता है। दावा और देय मिलकर एक हो गए हैं। दिन में काम और छुट्टी की निश्चित अवधि नहीं रह गई है। जो जिम्मेदारी उसके मन पर हावी है वह इसलिए और भी कठोर है कि इच्छा होते ही उसे छोड़ा जा सकता है; और कुछ न हो, स्त्री का ऋण तो उसे चुकाना ही पड़ेगा। उसके बाद कहीं सुस्थ होकर धीरे-धीरे चलने का समय आएगा। बायें हाथ में रिस्टवाच, सिर पर सोला हैट, आस्तीन चढ़ाए हुए, खाकी पैंट पर चमड़े की कमर-पेटी, पाव में मोटे सोल के जूते और आखों पर धूप का रंगीन चश्मा चढ़ाकर शशांक काम में जुट गया। स्त्री का ऋण पूरा होने पर आ गया है फिर भी वह स्टीम कम नहीं करना चाहता। इस समय उसका मन गर्म हो उठा है।

इससे पहले घर-गृहस्थी के आय-व्यय की धारा एक ही नाले से बहती थी। अब उसकी दो शाखाएं हो गईं। एक बैंक की ओर गई; दूसरी घर की ओर। शर्मिला को पहले जितना ही धन मिलता है। कहां किसका क्या देना-पावना है, इससे शशांक को कुछ मतलब। इसी प्रकार व्यवसाय-सम्बन्धी चमड़े की जिल्दवाला खाता श

: लिए दुर्गम किले जैसा है। इससे कोई हानि नहीं किन्तु स्वामी के यावसायिक जीवन का रास्ता शर्मिला को घर-गृहस्थी के इलाके के ाहर हो जाने के कारण उस ओर से उसके विधि-विधान की उपेक्षा होने लगी। वह विनय करती, "इतनी ज्यादती मत करो, शरीर टूट जाएगा।" परन्तु कोई फल नहीं होता। आश्चर्य तो यह है कि तबीयत भी नहीं खराब होती। स्वास्थ्य के लिए उद्वेग, विश्राम के अभाव प आक्षेप, आराम के साथ खाने-पीने, सोने-उठने की ओर ध्यान न देने पर झुंझलाहट इत्यादि दाम्पत्य की सभी उत्कंठाओं की उपेक्षा करके शशांक तड़के ही अपनी सेकंडहैंड फोर्ड गाड़ी लेकर निकल जाता है; दो-ढाई बजे काम से लौटकर आता है और जल्दी-जल्दी कुछ खाकर फिर चला जाता है।

एक दिन उसकी मोटरगाड़ी किसी और गाड़ी से भिड़ गई। खुद तो बच गया पर गाड़ी को काफी क्षति पहुंची। मरम्मत के लिए भेज दी। शर्मिला बहुत चिन्तित हो उठी। रुंधे गले से बोली, "अब ुम स्वयं गाड़ी नहीं हांक सकोगे।"

शशांक हंसी उड़ाते हुए बोला, "पराये हाथ में भी तो खतरा ज्यों का त्यों बना रहता है।"

एक दिन कोई मरम्मत का काम देखने गया तो पैक-बाक्स की कील जूते को छेदती पांव के तलुए में घुस गई। अस्पताल में जाकर पट्टी बंधवाई, धनुटंकार का टीका लगवाया, तब घर आया। उस दिन शर्मिला रुआंसी हो गई। बोली, "अब कुछ दिन चलना-फिरना बन्द करो, आराम करो।"

शशांक अत्यंत संक्षेप में बोला, "काम?" इससे संक्षेप में वह क्या कह सकता था!

शर्मिला बोली, "किन्तु..." इस बार शशांक बिना कुछ कहे, अपनी पट्टी के साथ, काम पर चला गया।

और जोर से कहने का साहस शर्मिला को नहीं होता। अपने क्षेत्र

पुरुष ने अपना जोर दिखा दिया है। युक्ति-तर्क, आरजू-मिन्नत का एक ही उत्तर मिलता है—'काम है।' शर्मिला अकारण चिन्तित होकर बैठ रहती है। देरी होते ही मोटर-दुर्घटना की आशंका होती है। धूप के कारण लाल हो रहे स्वामी के मुख को देखती तो उसके मन में आता कि जरूर इन्फ्लुएंज़ा हो गया है। डरते-डरते डाक्टर की बात चलानी चाहती, पर स्वामी का रुख देखकर वहीं रुक जाती। दिल खोलकर मन की बात कहने की हिम्मत भी उसे आजकल नहीं होती।

शशांक देखते-देखते धूप में तड़क गए तख्ते की तरह चिड़चिड़ा हो गया। तंग कपड़ा, तंग अवकाश, चाल तेज, बात करने में चिनगारी की तरह संक्षिप्त। शर्मिला उसकी द्रुत लय के साथ अपनी सेवा का ताल-सामंजस्य रखने की भरसक चेष्टा करती है। स्टोव के पास खाने की कुछ न कुछ चीज़ गर्म रखने के लिए रखनी पड़ती है, क्योंकि कोई ठीक नहीं कि कब स्वामी अचानक कह बैठें, 'चलो, लौटने में देर होगी।' मोटरगाड़ी में भी सोडावाटर की बोतल एवं छोटे टिन के डिब्बे में सूखा खाद्य-द्रव्य तैयार रखना पड़ता है। यू० डी० कोलोन की एक शीशी भी ऐसी जगह रख देती है जहां निगाह पड़ जाए और सिरदर्द होने पर काम आ सके। पर गाड़ी के लौटने पर वह देखती है कि किसी चीज़ का उपयोग नहीं किया गया है। मन उदास हो जाता है। सोने के कमरे में साफ कपड़े ऐसे स्थान पर रख देती कि निगाह पड़े, फिर भी सप्ताह में चार-चार दिन कपड़े बदलने का अवकाश नहीं मिलता। घर-गृहस्थी की बातें आवश्यक तार की ठोकरमार संक्षिप्त भाषा में होती हैं, वह भी चलते-फिरते पीछे से पुकारकर, 'अरे, एक बात तो सुनते जाओ!' उनके व्यवसाय के साथ शर्मिला का जो थोड़ा-सा सम्बन्ध था, वह भी सूद-सहित ऋण के चुक जाने पर समाप्त हो गया। सूद भी दिया है नाप-जोख करके, हिसाब से और उसकी दस्ती रसीद लिखवाकर। शर्मिला ने कहा, "बाप रे बाप,

प्रेम में भी पुरुष अपने को पूरी तरह नहीं मिला सकते ! बीच में कुछ व्यवधान रखते हैं जहां उनके पौरुष का अभिमान जागता रहता है।"

लाभ के रुपयों से शशांक ने भवानीपुर में एक मनमाफ़िक मकान बनवाया। यह उसके शौक की चीज है। स्वास्थ्य और आवास की नई-नई योजनाएं दिमाग में आ रही हैं। वह शर्मिला को आश्चर्य में डालना चाहता है। शर्मिला भी विधिवत् आश्चर्य प्रकट करने में कमी नहीं करती। इंजीनियर ने कपड़ा धोने की कल लगाई, शर्मिला ने चारों ओर देख-भालकर उसकी खूब तारीफ की, पर मन में बोली, 'कपड़े धुलने के लिए जैसे आज धोबी के घर जाते वैसे ही कल भी जाते रहेंगे। मैले कपड़ों के गर्दभ-वाहन को समझ चुकी हूं, यह विज्ञान-वाहन समझ में नहीं आता।' आलू के छिलके उतारनेवाली मशीन को देख ठक से रह गई। बोली, "आलूदम तैयार करने की बारह आना दिक्कत दूर हो गई।" परन्तु बाद में सुनाई पड़ा कि फूटी देगची और टूटी केतली के साथ वह भी कहीं फेंकी जाकर निरर्थक हो गई है।

जब मकान तैयार हो गया तब कहीं जाकर उस स्थावर पदार्थ से शर्मिला के रुद्ध स्नेह-उद्यम को मुक्ति मिली। सुविधा यह थी कि ईंट-लकड़ी की देह में धैर्य अटल होता है। सामान धरने-सजाने में दो-दो नौकर हांफ उठे; एक तो जवाब देकर चला भी गया। घर की सजावट का काम भी शशांक को दृष्टि में रखकर ही चल रहा है। बैठकखाने में तो वह आजकल बैठता ही नहीं, फिर भी उसकी क्लांत रीढ़ को विश्राम देने के लिए नाना प्रकार के फैशन के 'कुशन' लगाए जा रहे हैं। तिपाइयों और मेज़ों पर झालरदार फूल-कढ़े आवरण हैं और उनपर एकाध नहीं अनेक फूलदान रखे गए हैं। आज-कल दिन के समय सोने के कमरे में शशांक का आना नहीं होता है; उसके आधुनिक पंचांग में रविवार भी सोमवार का जुड़वां भाई बन गया है। और छुट्टी के दिनों में भी, जब काम बिलकुल बन्द रहता है, तब भी न जाने कहां से वह काम खोज निकालता है और आफिस

के कमरे में जाकर नक्शा बनाने का तेलकागज या बहीखाता लेकर बैठ जाता है। फिर भी पुराने नियम चल रहे हैं। मोटे गद्देदार सोफे के सामने मखमली चप्पल रखी रहती हैं। उसी तरह पानदान में पान लगाकर रखे जाते हैं। अलगनी पर बारीक रेशम का कुर्ता और चुनी हुई धोती रखी रहती है। आफिस के कमरे में जाकर हस्तक्षेप करने के लिए साहस की जरूरत है, फिर भी जब शशांक नहीं होता तो शर्मिला झाड़न हाथ में लेकर उसमें घुस जाती है और रखने तथा न रखने योग्य चीजों के सम्मिलित व्यूह से आवश्यक चीजों को निकाल-कर उन्हें यथास्थान सजाने से नहीं चूकती।

शर्मिला सेवा कर रही है, परन्तु आजकल उसकी सेवा का बहुत बड़ा भाग अदृश्य ही रह जाता है। पहले उसका आत्मनिवेदन था प्रत्यक्ष के सामने, आज उसका प्रयोग प्रतीक-रूप में है—घर-द्वार सजाने में, बाग-बगीचे में, शशांक की कुर्सी के रेशमी आवरण में, तकियों के गिलाफ पर बेल-बूटा बनाने में, आफिस के टेबल के एक कोने पर रखे फूलदान में रजनीगंधा के गुच्छे लगाने में।

अपना अर्घ्य पूजा की वेदी से दूर ही रखना पड़ता है, इसका उसे बड़ा दुख है। अभी कुछ दिन पहले जो चोट खाई है उसे छिपाकर आँखों के जल से धोना पड़ा है। उस दिन कार्तिक महीने की उन्नीसवीं तिथि थी—शशांक का जन्मदिन था। शर्मिला के जीवन का यह सबसे बड़ा पर्व होता है। उसने यथाविधि इष्टमित्रों को निमंत्रित किया था और घर-द्वार विशेष रूप से फूल-पत्तियों से सजाया गया था।

सवेरे का काम देखकर जब शशांक घर लौटा तो बोला, "क्या बात है? गुड्डे का विवाह है क्या?"

"हाय री किस्मत! आज तुम्हारा जन्मदिन है, यह भी भूल गए? चाहे कुछ कहो, आज शाम को तुम बाहर नहीं जा सकोगे।"

"बिजनेस मृत्यु-दिन के सिवा और किसी दिन के आगे अपना सिर नहीं झुकाता।"

"आगे और कभी नहीं कहूंगी। आज लोगों को निमंत्रित कर
की हूं।"

"देखो शर्मिला, तुम मुझे खिलौना बनाकर दुनिया के लोगों वे
ामने खेल करने की चेष्टा मत करो।" इतना कहकर शशांक जल्द
चला गया। शर्मिला शयनकक्ष का द्वार बन्द करके कुछ देर त
ोती रही।

तीसरे पहर लोग आने लगे। 'बिजनेस' का दावा उन लोगों ने सहज
मान लिया। यदि यह कालिदास का जन्मदिन होता तो 'शकुन्तला' का
तृतीय अंक लिखने के उज्र को ये लोग बिलकुल वाहियात ठहरा देते।
किन्तु बिजनेस! खूब आमोद-प्रमोद हुआ। नीलू बाबू ने थियेटर की
नकल करके सबको खूब हंसाया। शर्मिला भी उस हंसी में शामिल
हुई। शशांक-रहित शशांक के जन्मदिन ने आज शशांक-प्रतिष्ठित
बिजनेस के आगे साष्टांग प्रणिपात किया।

दुःख बहुत हुआ, फिर भी शर्मिला के मन ने दूर से शशांक के
रस दौड़ते हुए कार्यरथ की ध्वजा को प्रणाम किया। यह व्यवसाय
उसकी पहुंच से बाहर है, वह किसीकी परवाह नहीं करता—न स्त्री
की विनती की, न मित्रों के निमंत्रण की, न अपने आराम की ही।
अपने काम-काज के प्रति श्रद्धा रखकर ही मनुष्य अपने प्रति श्रद्धा
दिखाता है; यह उसका अपनी शक्ति के आगे अपना निवेदन—
समर्पण है। शर्मिला अपनी गृहस्थी की दैनिक कार्यधारा के इस पार
खड़ी बड़े आदर से उस पार स्थित शशांक के काम को देखती रहती
है। उसकी सत्ता बड़ी व्यापक है, घर की सीमा लांघकर वह बहुत
दूर चली गई है, दूर समुद्र के पार न जाने कितने परिचित-अपरिचित
लोगों को अपने शासन-जाल में खींच लाती है। अपने अदृष्ट—
भाग्य—के साथ प्रतिदिन पुरुष का युद्ध चल रहा है। उसके यात्रापथ
में स्त्रियों का कोमल बाहुबंधन यदि बाधक होता है तो उसे निर्मम
वेग से छिन्न करके आगे जाने के सिवाय पुरुष के लिए और क्य

उपाय है ? इस निर्ममता को शर्मिला ने भक्तिपूर्वक ग्रहण किया। बीच-बीच में उससे रहा नहीं जाता। जहां अधिकार नहीं, वहां भी यह हृदय अपनी करुण उत्कण्ठा से खींच ले जाता है। इससे चोट लगती है, हर उस चोट को प्राप्य मानकर वह व्यथित मन से राह छोड़ लौट आती है। देवता से कहती है, "तुम देखना, मेरी गतिविधि तो वहां अवरुद्ध है।"

नीरद

जिस समय बैंक में जमा रुपयों पर सवार होकर इस परिवार की समृद्धि छः अंकों की ओर दौड़ी चली जा रही थी, उसी समय शर्मिला को किसी दुर्बोध बीमारी ने घर दबाया; उठने की शक्ति भी नहीं रह गई। उसके बारे में जो दुश्चिन्ता है, उसे समझने के लिए कथा को कुछ विस्तार से बताना पड़ेगा।

शर्मिला के पिता थे राजाराम बाबू। बारीसाल की ओर तथा गंगा के मुहाने के आसपास उनकी बहुत बड़ी जमींदारी थी। इसके अलावा भी शालीमार घाट के जहाजी कारखाने में उनका हिस्सा था। उनका जन्म पिछले जमाने के अन्त और इस जमाने के शुरू में हुआ था। कुश्ती, शिकार और लाठी चलाने में उस्ताद थे। पखावज बजाने में उनका नाम था। 'मर्चेंट आफ वेनिस' 'जूलियस सीजर' तथा 'हैमलेट'[1] में से दो-चार पन्ने मुंहजबानी सुना सकते थे; मेकाले[2] की अंग्रेजी उनका आदर्श थी; वे बर्क[3] की वाग्मिता पर मुग्ध थे,

---

१. ये तीनों अंग्रेजी भाषा के प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपीयर के नाटक हैं। २. इंग्लैंड के एक राजनीतिज्ञ तथा लेखक। ३. इंग्लैंड की पार्लियामेंट का प्रसिद्ध वक्ता जिसने वारेन हेस्टिंग्ज पर शोषण के चार्ज में जोशीली वक्तृता दी थी।

वंगला भापा के प्रति उनकी श्रद्धा की सीमा 'मेघनाद वध'[1] काव्य तक ही थी। मध्य आयु में शराब और निषिद्ध भोज्य पदार्थों को आधुनिक मानसिक उन्नति का आवश्यक अंग मानते थे, परन्तु आखिरी उम्र में इन्हें छोड़ दिया था। उनका पहनावा आकर्षक, मुखश्री सुन्दर गम्भीर, शरीर वलवान तथा मिज़ाज मजलिसी था। शरण ग्रहण करने वाले किसी प्रार्थी को 'ना' कहना नहीं जानते थे। पूजा-अर्चना में कोई निष्ठा न थी, फिर भी वह उनके घर में समारोह पूर्वक होती थी। समारोह से लौकिक मान-मर्यादा व्यक्त होती थी; पूजा होती थी स्त्रियों तथा दूसरे लोगों के लिए। इच्छा होती तो वड़ी सरलता से 'राजा', की उपाधि प्राप्त कर सकते थे। जव कोई इसके प्रति उदासीनता का कारण पूछता, हंसकर जवाव देते, "पितृदत्त राजा की उपाधि तो भोग रहे हैं, उसके ऊपर किसी और उपाधि को स्थान देने से उनका सम्मान नष्ट हो जाएगा।" गवर्नमेंट हाउस की खास ड्योढ़ी में प्रवेश करने का उन्हें अधिकार था। वड़े-वड़े अंग्रेज अधिकारी उनके घर की चिर-प्रचलित जगद्धात्री पूजा में शामिल होने के लिए आते और पर्याप्त मात्रा में शेम्पन का प्रसाद उदरस्थ करते थे।

शर्मिला के व्याह के वाद उनके पत्नीहीन घर में रह गया—वड़ा लड़का हेमन्त और छोटी लड़की ऊर्मिमाला। लड़के को उसके अध्यापकगण दीप्तिमान अर्थात् 'ब्रिलियण्ट' वताते थे। उसका मुख तो पीछे फिरकर देखने लायक था। ऐसा कोई विपय नहीं था जिसमें परीक्षामान के उच्चतम अंक उसने न पाए हों। फिर वह व्यायाम में भी वाप की इज्जत वनाए रखेगा, ऐसे लक्षण प्रवल थे। कहना निरर्थक है कि उसके चारों ओर उत्कण्ठित कन्या-मंडल की प्रदक्षिणा वरावर चल रही थी, किन्तु अभी तक विवाह की ओर से उसका मन उदासीन ही था। इस समय उसका ध्यान था—यूरोपीय विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त करने

---

१. माइकेल मधुसूदनदत्त-रचित वंगला महाकाव्य।

की ओर। मन में यह उद्देश्य रखकर ही उसने फ्रेंच और जर्मन भाषाएं सीखनी शुरू कर दी थीं।

और कोई काम हाथ न आने पर, अनावश्यक होते हुए भी, हेमन्त ने कानून पढ़ना शुरू ही किया था कि उसकी आंतों या शरीर के किसी यन्त्र में कोई ऐसा विकार पैदा हो गया कि डाक्टरों को उसकी कोई थाह ही नहीं मिली। उस गोपनचारी रोग को उसके सबल शरीर में उसी प्रकार आश्रय मिल गया जैसे कोई शत्रु पकड़े जाने के भय से किले में छिप जाता है। उसका पता लगाना जितना मुश्किल था उसपर आक्रमण करना भी उतना ही कठिन हो गया। उस जमाने में एक अंग्रेज डाक्टर के ऊपर राजाराम बाबू की अविचल आस्था थी। अस्त्रचिकित्सा (आपरेशन) में उसका काफी नाम था। उन्होंने रोगी की परीक्षा शुरू की। अस्त्र-व्यवहार की आदत के कारण उन्होंने अनुमान लगाया कि देह की दुर्गम गुहा में बीमारी ने जड़ पकड़ ली है, उसे निर्मूल करना होगा। अस्त्रकौशल की सहायता से चीरकर जिस स्थान को देखा गया, वहां न वह कल्पित शत्रु था, न उसके अत्याचार का कोई चिह्न था। भूल-सुधार का कोई रास्ता ही न रहा। लड़का मारा गया। बाप के मन का गहरा दुःख किसी भी प्रकार शान्त होना नहीं चाहता। उनका दिल तो टूट ही गया, पर एक बलिष्ठ, सजीव सुन्दर देह को इस प्रकार चीरने-फाड़ने की स्मृति दिन-रात काले हिंस्र पक्षी की भांति तीक्ष्ण नख और चंगुल में उनके हृदय को दबाकर उनका रक्तपान करने और उनको मृत्यु की ओर धकेलने लगी।

हेमन्त का पूर्व-सहपाठी और अभी-अभी पास हुआ डाक्टर नीरद मुकर्जी उसकी तीमारदारी में था। वह बराबर जोर देकर कहता रहा कि भूल हो रही है। उसने हेमन्त के रोग का स्वरूप-निर्णय किया था और सलाह दी थी कि किसी सूखी जगह जाकर दीर्घकाल तक वहां रहकर हवा-पानी बदलने से लाभ हो सकता है। किन्तु राजाराम

बंगला भाषा के प्रति उनकी श्रद्धा की सीमा 'मेघनाद वध'[1] काव्य तक ही थी। मध्य आयु में शराब और निषिद्ध भोज्य पदार्थों को आधुनिक मानसिक उन्नति का आवश्यक अंग मानते थे, परन्तु आखिरी उम्र में इन्हें छोड़ दिया था। उनका पहनावा आकर्षक, मुखश्री सुन्दर गम्भीर, शरीर बलवान तथा मिजाज मजलिसी था। शरण ग्रहण करने वाले किसी प्रार्थी को 'ना' कहना नहीं जानते थे। पूजा-अर्चना में कोई निष्ठा न थी, फिर भी वह उनके घर में समारोह पूर्वक होती थी। समारोह से लौकिक मान-मर्यादा व्यक्त होती थी; पूजा होती थी स्त्रियों तथा दूसरे लोगों के लिए। इच्छा होती तो बड़ी सरलता से 'राजा', की उपाधि प्राप्त कर सकते थे। जब कोई इसके प्रति उदासीनता का कारण पूछता, हंसकर जवाब देते, "पितृदत्त राजा की उपाधि तो भोग रहे हैं, उसके ऊपर किसी और उपाधि को स्थान देने से उनका सम्मान नष्ट हो जाएगा।" गवर्नमेंट हाउस की खास ड्योढ़ी में प्रवेश करने का उन्हें अधिकार था। बड़े-बड़े अंग्रेज अधिकारी उनके घर की चिर-प्रचलित जगद्धात्री पूजा में शामिल होने के लिए आते और पर्याप्त मात्रा में शेम्पन का प्रसाद उदरस्थ करते थे।

शर्मिला के व्याह के बाद उनके पत्नीहीन घर में रह गया—बड़ा लड़का हेमन्त और छोटी लड़की ऊर्मिमाला। लड़के को उसके अध्यापकगण दीप्तिमान अर्थात् 'ब्रिलियण्ट' बताते थे। उसका मुख तो पीछे फिरकर देखने लायक था। ऐसा कोई विषय नहीं था जिसमें परीक्षामान के उच्चतम अंक उसने न पाए हों। फिर वह व्यायाम में भी बाप की इज्जत बनाए रखेगा, ऐसे लक्षण प्रबल थे। कहना निरर्थक है कि उसके चारों ओर उत्कण्ठित कन्या-मंडल की प्रदक्षिणा बराबर चल रही थी, किन्तु अभी तक विवाह की ओर से उसका मन उदासीन ही था। इस समय उसका ध्यान था—यूरोपीय विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त करने

---

१. माइकेल मधुसूदनदत्त-रचित बंगला महाकाव्य।

की ओर। मन में यह उद्देश्य रखकर ही उसने फ्रेंच और जर्मन भाषाएं सीखनी शुरू कर दी थीं।

और कोई काम हाथ न आने पर, अनावश्यक होते हुए भी, हेमन्त ने कानून पढ़ना शुरू ही किया था कि उसकी आंतों या शरीर के किसी यन्त्र में कोई ऐसा विकार पैदा हो गया कि डाक्टरों को उसकी कोई थाह ही नहीं मिली। उस गोपनचारी रोग को उसके सबल शरीर में उसी प्रकार आश्रय मिल गया जैसे कोई शत्रु पकड़े जाने के भय से किले में छिप जाता है। उसका पता लगाना जितना मुश्किल था उसपर आक्रमण करना भी उतना ही कठिन हो गया। उस ज़माने में एक अंग्रेज़ डाक्टर के ऊपर राजाराम बाबू की अविचल आस्था थी। अस्त्रचिकित्सा (आपरेशन) में उसका काफी नाम था। उन्होंने रोगी की परीक्षा शुरू की। अस्त्र-व्यवहार की आदत के कारण उन्होंने अनुमान लगाया कि देह की दुर्गम गुहा में बीमारी ने जड़ पकड़ ली है, उसे निर्मूल करना होगा। अस्त्रकौशल की सहायता से चीरकर जिस स्थान को देखा गया, वहां न वह कल्पित शत्रु था, न उसके अत्याचार का कोई चिह्न था। भूल-सुधार का कोई रास्ता ही न रहा। लड़का मारा गया। बाप के मन का गहरा दुःख किसी भी प्रकार शान्त होना नहीं चाहता। उनका दिल तो टूट ही गया, पर एक बलिष्ठ, सजीव सुन्दर देह को इस प्रकार चीरने-फाड़ने की स्मृति दिन-रात काले हिंस्र पक्षी की भांति तीक्ष्ण नख और चंगुल से उनके हृदय को दबाकर उनका रक्तपान करने और उनको मृत्यु की ओर धकेलने लगी।

हेमन्त का पूर्व-सहपाठी और अभी-अभी पास हुआ डाक्टर नीरद मुकर्जी उसकी तीमारदारी में था। वह बराबर जोर देकर कहता रहा कि भूल हो रही है। उसने हेमन्त के रोग का स्वरूप-निर्णय किया था और सलाह दी थी कि किसी सूखी जगह जाकर दीर्घकाल तक वहां रहकर हवा-पानी बदलने से लाभ हो सकता है। किन्तु राजाराम

बाबू के मन में उनका पैतृक संस्कार अटल था। वे जानते थे कि ग
के साथ दुःसाध्य लड़ाई छिड़ जाने पर उसका उपयुक्त प्रतिद्वन्दी एक-
मात्र अंग्रेज़ डाक्टर ही हो सकता है। इस दुर्घटना के अन्तर्गत नीरद
पर उनका विश्वास और स्नेह अत्यधिक बढ़ गया। उनकी छोटी कन्या
ऊर्मि के मन में भी ऐसी बात आई कि इस आदमी की प्रतिभा
असाधारण है। पिता से बोली, "देखो तो बाबा, इस छोटी उम्र में
ही उनका अपने पर कैसा दृढ़ विश्वास है! इतने बड़े विलायती डाक्टर
के मत के विरुद्ध अपनी बात कहने में कैसी दृढ़ता का परिचय दिया!"

बाबा ने कहा, "डाक्टरी विद्या केवल शास्त्रज्ञान नहीं है। किसी-
किसीमें उसका दुर्लभ दैवी संस्कार पाया जाता है। नीरद में वही
बात देखता हूं।"

इनकी भक्ति शुरू हुई एक छोटे-से प्रमाण को लेकर, शोक के
आघात से अनुताप की वेदना में। उसके बाद प्रमाण की परवाह किए
बिना ही वह बढ़ती गई।

एक दिन राजाराम ने कन्या से कहा, "देख ऊर्मि, मुझे ऐसा सुनाई
है, मानो हेमन्त मुझे पुकारकर कह रहा हो कि आदमियों के
रोग-दुःख को दूर करो। मैंने निश्चय किया है कि उसके नाम पर
एक अस्पताल की स्थापना करूंगा।"

ऊर्मि ने अपने स्वाभाविक उत्साह से उच्छ्वसित होकर कहा,
'बड़ा अच्छा रहेगा। मुझे यूरोप भेज देना, वहां से डाक्टरी सीखकर
लौट आऊंगी और इस अस्पताल का भार स्वयं उठा लूंगी।"

बात राजाराम के हृदय में बैठ गई। बोले, "यह अस्पताल तो
गा देवोत्तर सम्पत्ति का, तू होगी उसकी सेविका। हेमन्त बड़ा दुःख
कर गया है, तुझे वह बहुत प्यार करता था। तेरे इस पुण्यकार्य से
े परलोक में शान्ति मिलेगी। उसकी बीमारी में तू ही रात-दिन
की सेवा करती रही; यही सेवा तेरे हाथ से बढ़ती जाएगी।"
ने बड़े घर की कन्या डाक्टरी करेगी, यह बात वृद्ध पिता को ज़रा

भी नहीं अखरी। रोग के हाथ से आदमी को बचाना कितना बड़ा काम है, इसे वे हृदय से अनुभव कर रहे हैं। उनका लड़का नहीं बचा, किन्तु दूसरों के बच्चे बचते रहे तो उससे उनकी क्षतिपूर्ति हो जाएगी और शोक भी कम हो जाएगा। लड़की से बोले, "यहां की यूनिवर्सिटी की पढ़ाई पूरी कर ले, फिर यूरोप जाना।"

इसी समय से राजाराम के मन में एक और बात घूमने लगी। वह है लड़के नीरद की बात। नीरद सोने का टुकड़ा है। जब देखते हैं चमत्कार-सा लगता है। डाक्टरी पास कर चुका है, परीक्षा के मरुस्थल को पार कर डाक्टरी विद्या के समुद्र में तैर रहा है। थोड़ी उम्र है फिर भी आमोद-प्रमोद अथवा और किसी बात से उसका मन विचलित नहीं होता। जो कोई आविष्कार होता है, भली भांति उलटकर उसीकी आलोचना और परीक्षा करता है, और अपनी प्रैक्टिस की क्षति की परवाह नहीं करता। जिन डाक्टरों की प्रैक्टिस जोरों से चल रही है, उनकी अवज्ञा करता है। कहता है, 'मूर्ख लोग उन्नति और योग्य व्यक्ति गौरव-लाभ करते हैं।' किसी किताब से उसने यह बात ले ली है।

अन्त में एक दिन राजाराम ने ऊर्मि से कहा, "विचारकर देख लिया, हमारे अस्पताल में यदि तू नीरद की संगिनी बनकर काम करेगी तो काम पूरा हो जाएगा और मैं भी निश्चिन्त हो जाऊंगा। उसके जैसा लड़का मुझे कहां मिलेगा!"

राजाराम चाहे और जो कुछ करें, पर हेमन्त की इच्छा को अग्राह्य नहीं कर सकते। हेमन्त कहा करता था कि लड़कियों की पसन्द की उपेक्षा करके माता-पिता की पसन्द का विवाह करना बर्बरता है। राजाराम ने एक दिन यह तर्क उपस्थित किया था कि विवाह वस्तुतः व्यक्तिगत बात नहीं है, उसके साथ घर-गृहस्थी की बात लगी हुई है, इसलिए विवाह केवल इच्छा द्वारा नहीं—अनुभव द्वारा सम्पन्न होना चाहिए। तर्क चाहे जैसा करें, अभिरुचि चाहे जैसी हो, किन्तु हेमन्त पर उनका स्नेह इतना गहरा था कि उसीकी इच्छा इस परिवार में चलती थी।

नीरद मुकर्जी का इस घर में आना-जाना है। हेमन्त ने उसका नाम रखा था 'आउल' अर्थात् उल्लू। इसके अर्थ की व्याख्या करने को कहने पर वह कहता, 'वह आदमी पौराणिक है—माइथालोजिकल; उसके वयस नहीं है, है केवल विद्या, इसीसे मैं उसे मिनर्वा[1] का वाहन कहता हूं।'

नीरद इस घर में कभी-कभी चाय पीने आया करता था। तब हेमन्त के साथ उसकी गहरी बहस चलती थी। उसका मन ऊर्मि की ओर जाता था, पर व्यवहार में ऐसी कोई बात नहीं थी। कारण, इस क्षेत्र में यथोचित व्यवहार उसके स्वभाव में ही नहीं है। वह आलोचना कर सकता है पर आलाप करना नहीं जानता। यौवन का उत्ताप भले उसके अन्दर हो पर उसकी ज्योति उसमें नहीं है। इसलिए प्रकाशमान यौवनवाले युवकों की अवज्ञा करने में उसे सन्तोष होता है। इन्हीं कारणों से किसीने उसे ऊर्मि के उम्मीदवारों में गिनने का साहस नहीं किया। उसकी वह ऊपर दिखने वाली अनासक्ति ही, अन्य कारणों के साथ मिलकर उसके प्रति ऊर्मि की श्रद्धा को सम्मान सीमा तक खींच लाई थी।

राजाराम ने जब स्पष्ट कह दिया कि यदि लड़की के मन में किसी तरह की दुविधा न हो तो नीरद के साथ उसका विवाह होने से उन्हें प्रसन्नता होगी, तब लड़की ने भी अनुकूल संकेत करते हुए सिर झुका लिया। हां, इतना अवश्य बता दिया कि इस देश की और विलायत की शिक्षा पूरी करने के बाद ही विवाह हो सकेगा। पिता ने कहा, "यह तो अच्छी बात है, परन्तु परस्पर सम्मति लेकर सम्बन्ध पक्का हो जाए तो फिर चिन्ता की कोई बात नहीं रहेगी।"

नीरद की सम्मति पाने में देर नहीं लगी। यद्यपि उसके भाव से यही मालूम हुआ कि विवाह-बन्धन वैज्ञानिक के लिए त्याग करने

---

१. लक्ष्मी

जैसा ही है, प्रायः आत्मघात जैसा है। जान पड़ता है इस दुर्योग का शमन करने की दृष्टि से ही यह शर्त तय पाई कि पढ़ाई-लिखाई तथा अन्य सब विषयों में नीरद ही ऊर्मि का संचालन करेगा अर्थात् भावी पत्नी के रूप में धीरे-धीरे उसे अपने हाथ से गढ़ेगा। यह सब भी होगा, वैज्ञानिक रीति से, दृढ़ नियंत्रित नियमों से, लेबोरेटरी[1] की निर्भ्रान्त प्रक्रिया की रीति से।

नीरद ऊर्मि से बोला, "पशु-पक्षी प्रकृति के कारखाने से तैयार पदार्थ के रूप में निकलते हैं। किन्तु मनुष्य है कच्चा माल। उसको ठीक तरह से गढ़कर बनाने की जिम्मेदारी स्वयं आदमी पर है।"

ऊर्मि नम्रतापूर्वक बोली, "अच्छा परीक्षा कर लीजिए। बाधा न पाएंगे।"

नीरद बोला, "तुम्हारे अन्दर शक्ति नाना प्रकार की है। उसे तुम्हारे जीवन के एकमात्र लक्ष्य के चारों ओर बांध रखना होगा। तभी तुम्हारा जीवन सार्थक होगा। एक अभिप्राय लेकर विक्षिप्त को संक्षिप्त करना होगा। अब वह ठोस हो जाएगा, डाइनेमिक (गति-शील) हो जाएगा, तभी उस एकत्व को 'मारल आर्गेनिज़्म' कहा जा सकता है।"

ऊर्मि ने पुलकित होकर सोचा कि अनेक युवक उसकी चाय की टेबल पर और उसके टेनिस कोर्ट में आए हैं, किन्तु विचार करने योग्य बात उनमें से किसीने नहीं कही; दूसरा कोई कहता है तो उन्हें जम्हाई आती है। वस्तुतः अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक अपनी बात कहने का एक खास ढंग है नीरद का। वह चाहे जो भी कहे, ऊर्मि के मन में होता है कि उसमें एक आश्चर्यजनक तात्पर्य निहित है, बहुत ज्यादा इण्टेलेक्चुअल—बौद्धिक।

तब राजाराम ने बड़े जमाई को बुलाया। बीच-बीच में नि

---

1. अनुसंधानशाला

देकर उसे बुलाते और चेष्टा करते कि नीरद और उसके बीच अच्छी तरह बातचीत हो जाए। शशांक शर्मिला से कहता, "लड़के में असह्य बुजुर्गी है। वह समझता है कि हम सब उसके छात्र हैं, और वे भी पीछे की बेंच के एक कोने में बैठने वाले।"

शर्मिला हंसकर कहती, "यह तुम्हारी 'जेलसी' (ईर्ष्या) है। मुझे तो वह बड़ा अच्छा लगता है।"

शशांक कहता, "छोटी बहिन के साथ अदला-बदली कर लेना कैसा होगा?"

शर्मिला कहती, "तुम तो छुटकारा पा लो। मेरी बात दूसरी है।"

शशांक के प्रति नीरद का भ्रातृ-भाव बढ़ गया हो, ऐसा भी नहीं जान पड़ता। वह मन ही मन कहता है, "वह तो मजूर है, वैज्ञानिक थोड़े ही है। हाथ तो हैं, दिमाग कहां है?"

शशांक नीरद के विषय में प्रायः अपनी साली से मज़ाक किया करता है। कहता है, "अब तो पुराना नाम बदल डालने का समय आ है।"

"अंग्रेजी मत से?"

"नहीं, विशुद्ध संस्कृत मत से।"

"सुनूं तो नया नाम?"

"विद्युल्लता। नीरद को पसन्द आएगा। लेबोरेटरी में इस वस्तु के साथ उसका परिचय है; अब वह घर में बंधी रहेगी।"

और मन ही मन कहता, 'सचमुच यह नाम इसका जंचता है।' भीतर ही भीतर एक ठेस भी लगती, 'हाय रे! इतने बड़े दंभी के हाथ में जा पड़ी ऐसी लड़की!' किसके हाथ पड़ने से शशांक की रुचि को सन्तोष होता, यह कहना कठिन है।

थोड़े दिन बाद राजाराम की मृत्यु हो गई। ऊर्मि के भावी स्वत्वाधिकारी नीरदनाथ ने उसे गढ़ने का भार, एकाग्र मन से अपने ऊपर ले लिया।

ऊर्मिमाला देखने मे जितनी अच्छी है, उससे ज्यादा अच्छी दीखती है। उसकी चंचल देह मे मन की उज्ज्वलता झलमलाती रहती है। सभी विषयो मे उसकी उत्सुकता है। साइंस में उसका मन जितना लगता है, साहित्य में उससे ज्यादा लगता होगा, कम नहीं। मैदान में फुटबाल देखने जाने के लिए उसका असीम आग्रह रहता है और सिनेमा देखने के प्रति भी उसकी अवज्ञा-भावना नहीं है। प्रेसीडेंसी कालेज में विलायत से फिजिक्स (भौतिकी) का एक व्याख्याता आया है, उसकी सभा मे भी वह उपस्थित दिखाई पडती। कान से रेडियो भी सुनती है, कभी कहती है, 'छि: !' फिर भी यथेष्ट कौतूहल बना रहता है। रास्ते में गाजे-बाजे के साथ कोई वर विवाह के लिए जा रहा होता है तो वह झट बरामदे में पहुंच जाती है। बार-बार जूलोजीकल पार्क (चिड़ियाघर) घूम आती है; वहां उसे बन्दरों के सींखचे के सामने खड़ा होने में अच्छा लगता है। जब उसके पिता कहीं मछली पकड़ने जाते तो वह उनके पास जाकर बैठ जाती। टेनिस खेलती है; बैडमिण्टन खेलने में तो उस्ताद है। यह सब दादा (बड़े भाई) से सीखा है। वह संचारिणीलता की भांति लम्बी (छरहरी) है, ज़रा-सी हवा लगते ही झूमने लगती है। साज-शृंगार सहज और सुरुचिपूर्ण है। वह जानती है कि साड़ी को किस प्रकार यहां-वहां से खींच-खांचकर, घुमा-फिराकर, ढील देकर या कसके अंगों की शोभा बढ़ाई जा सकती है। साथ ही उसका रहस्य भी समझ में नहीं आता। गाना अच्छी तरह नहीं जानती किन्तु सितार बजाती है। वह संगीत देखने के लिए या सुनने के लिए, कौन जाने ? जान पड़ता है उसकी दुरन्त उंगलियां कोलाहल कर रही हैं। बात करने के लिए उसे कभी विषय का अभाव नहीं होता; हंसने के लिए उसे उपयुक्त कारण की जरूरत नहीं पड़ती। साथ देने की उसमें अजस्र क्षमता है। रहती है वहां की रिक्तता को अकेले ही भर देती है। केवल न सामने वह एक दूसरा ही प्राणी बन जाती है; पाल की नाव

वहां वन्द हो जाती है; फिर रस्सी के खिचाव से वह नम्र मंथर गति से चलती है।

सभी कहते हैं कि ऊर्मि का स्वभाव अपने भाई जैसा ही प्राणवान है। ऊर्मि जानती है कि उसके भाई ने ही उसके मन को मुक्ति प्रदान की थी। हेमन्त कहा करता था कि हमारे घर क्या हैं, मिट्टी के मनुष्य गढ़ने के सांचे हैं। तभी तो इतने समय से विदेशी जादूगर ऐसी सरलता के साथ तैंतीस करोड़ पुतलों को नचाते रहे हैं। वह कहता था 'जब मेरा समय आएगा तो इस सामाजिक पुतलेपन को तोड़ने के लिए काला पहाड़[1] की तरह निकल पड़ूंगा।' समय नहीं आया किन्तु ऊर्मि के मन को वह खूब सजीव करके छोड़ गया है।

इसीको लेकर मुश्किल हो गई। नीरद के काम करने का ढंग है अत्यन्त नियमबद्ध। पाठ्य की तरह कुछ बंधे नियम उसने ऊर्मि के लिए बना लिए। उसे उपदेश देते हुए बोला, "देखो ऊर्मि, रास्ता चलते-चलते मन को बार-बार छलकने न देना, नहीं तो मंज़िल पर पहुंचते-पहुंचते घड़े में कुछ नहीं बचेगा।"

कहता—"तुम तितली की तरह चंचल हो, घूमती-फिरती हो, कुछ भी संग्रह नहीं कर पातीं। तुम्हें होना पड़ेगा मधुमक्खी की तरह। प्रत्येक मुहूर्त का हिसाब है। जीवन कोई विलासिता नहीं है।"

सम्प्रति नीरद ने इम्पीरियल लाइब्रेरी से शिक्षातत्त्व पर पुस्तकें ला-लाकर पढ़ना शुरू किया है। उनमें इसी तरह की बातें लिखी हैं। उसकी भाषा किताबों की भाषा है, उसकी अपनी सहज भाषा नहीं है। ऊर्मि को सन्देह नहीं रहा कि वह अपराधिनी है। उसका व्रत महत् है, उसे भूलकर बात-बात में उसका मन इधर-उधर चला जाता है और उसे लांछित करता है। नीरद का दृष्टांत तो सामने

---

१. बंगाल का एक ऐतिहासिक व्यक्ति जिसने अनेकानेक हिन्दुओं को मारा था।

रखा है, कैसा आश्चर्यजनक दृष्टान्त है, कैसा एकाग्र लक्ष्य है, सब प्रकार के आमोद-प्रमोद के प्रति कैसा कठोर विरोध-भाव है उसमें! ऊर्मि के टेबल पर कहानी या किसी हल्के साहित्य की कोई पुस्तक देखता है तो उसे जब्त कर लेता है। एक दिन शाम को ऊर्मि को देखने आया तो सुना कि वह अंग्रेजी नाट्यशाला में मालिवेन के मिकाडो-ऑपेरा का सायंकालीन अभिनय देखने गई है। जब दादा (बड़े भाई) जीवित थे तो इस प्रकार के सुयोग प्रायः मिला करते थे। उस दिन नीरद ने उसका बड़ा तिरस्कार किया। बड़े गम्भीर स्वर में अंग्रेजी भाषा में बोला, "देखो, अपना समस्त जीवन देकर अपने दादा की मृत्यु को सार्थक करने का भार तुमने लिया है। क्या अभी से उसे भूलने लगी हो?"

सुनकर ऊर्मि को बड़ा परिताप हुआ। सोचा, 'इस मनुष्य की कैसी असाधारण अन्तर्दृष्टि है! भाई की शोक-स्मृति भी प्रबलता सचमुच कम हो गई है; मैं स्वयं इस बात को न जान सकी। धिक्कार है! मेरे चरित्र में इतनी चंचलता!' वह सावधान होने लगी। कपड़े-लत्ते से साज-शृंगार का आभास तक हटा दिया। फीके रंग की मोटी साड़ी ग्रहण कर ली। दराज में रहने पर भी चाकलेट खाने का मोह छोड़ दिया। अबाध्य मन को खूब कसकर [illegible] के खूंटे से बांधने लगी। दीदी तिरस्कार करती और शशांक नीरद के लिए दिन भर प्रखर विशेषणों की वर्षा करता वे उसकी भाषा के कोष से बाहर के उग्र परदेशी होते तथा उच्च भी [illegible] न करते।

एक जगह नीरद के साथ शशांक का स्वभाव मिलता है। शशांक का गाली देने का आवेग जब तीव्र हो उठता है तब उसकी भाषा अंग्रेजी हो जाती है। नीरद का उपदेश जब अत्यन्त उच्च श्रेणी का होता है, तब उसकी भाषा भी अंग्रेजी होती है। नीरद को तब सबसे बुरा लगता है जब निमंत्रण-आमंत्रण में ऊर्मि अपनी दीदी के घर जाती है। वह वहाँ जाती ही नहीं, जाने के लिए बड़ा आग्रह है उसमें,

हां बन्द हो जाती है; फिर रस्सी के खिचाव से वह नम्र मंथर गति से चलती है।

सभी कहते हैं कि ऊर्मि का स्वभाव अपने भाई जैसा ही प्राणवान है। ऊर्मि जानती है कि उसके भाई ने ही उसके मन को मुक्ति प्रदान की थी। हेमन्त कहा करता था कि हमारे घर क्या हैं, मिट्टी के मनुष्य गढ़ने के सांचे हैं। तभी तो इतने समय से विदेशी जादूगर ऐसी सरलता के साथ तेंतीस करोड़ पुतलों को नचाते रहे हैं। वह कहता था 'जब मेरा समय आएगा तो इस सामाजिक पुतलेपन को तोड़ने के लिए काला पहाड़[1] की तरह निकल पड़ूंगा।' समय नहीं आया किन्तु ऊर्मि के मन को वह खूब सजीव करके छोड़ गया है।

इसीको लेकर मुश्किल हो गई। नीरद के काम करने का ढंग है अत्यन्त नियमबद्ध। पाठ्य की तरह कुछ बंधे नियम उसने ऊर्मि के लिए बना लिए। उसे उपदेश देते हुए बोला, "देखो ऊर्मि, रास्ता चलते-चलते मन को बार-बार छलकने न देना, नहीं तो मंज़िल पर चते-पहुंचते घड़े में कुछ नहीं बचेगा।"

कहता—"तुम तितली की तरह चंचल हो, घूमती-फिरती हो, कुछ भी संग्रह नहीं कर पातीं। तुम्हें होना पड़ेगा मधुमक्खी की तरह। प्रत्येक मुहूर्त का हिसाब है। जीवन कोई विलासिता नहीं है।"

सम्प्रति नीरद ने इम्पीरियल लाइब्रेरी से शिक्षातत्त्व पर पुस्तकें ला-लाकर पढ़ना शुरू किया है। उनमें इसी तरह की बातें लिखी हैं। उसकी भापा किताबों की भाषा है, उसकी अपनी सहज भापा नहीं है। ऊर्मि को सन्देह नहीं रहा कि वह अपराधिनी है। उसका व्रत महत् है, उसे भूलकर बात-बात में उसका मन इधर-उधर चला जाता है और उसे लांछित करता है। नीरद का दृष्टांत तो सामने

---

१. बंगाल का एक ऐतिहासिक व्यक्ति जिसने अनेकानेक हिन्दुओं को मारा था।

रखा है, कैसा आश्चर्यजनक दृष्टांत है, कैसा एकाग्र लक्ष्य है, सब प्रकार के आमोद-प्रमोद के प्रति कैसा कठोर विरोध-भाव है उसमें! ऊर्मि के टेबल पर कहानी या किसी हल्के साहित्य की कोई पुस्तक देखता है तो उसे जब्त कर लेता है। एक दिन शाम को उर्मि को देखने आया तो सुना कि वह अंग्रेज़ी नाट्यशाला में सालिवेन के मिकाडो-ओपेरा का सांध्यकालीन अभिनय देखने गई है। जब दादा (बड़े भाई) जीवित थे तो इस प्रकार के सुयोग प्रायः मिला करते थे। उस दिन नीरद ने उसका बड़ा तिरस्कार किया। बड़े गम्भीर स्वर में अंग्रेज़ी भाषा में बोला, "देखो, अपना समस्त जीवन देकर अपने दादा की मृत्यु को सार्थक करने का भार तुमने लिया है। क्या अभी से उसे भूलने लगी हो?"

सुनकर ऊर्मि को बड़ा परिताप हुआ। सोचा, 'इस मनुष्य की कैसी असाधारण अन्तर्दृष्टि है! भाई की शोक-स्मृति की प्रबलता सचमुच कम हो गई है; मैं स्वयं इस बात को न जान सकी। धिक्कार है! मेरे चरित्र में इतनी चंचलता!' वह सावधान होने लगी। कपड़े-लत्ते से साज-शृंगार का आभास तक हटा दिया। फीके रंग की मोटी साड़ी ग्रहण कर ली। दराज़ में रहने भर भी चाकलेट खाने का मोह छोड़ दिया। अबाध्य मन को खूब कसकर संकीर्ण प्रकोष्ठ में शुष्क कर्तव्य के खूंटे से बांधने लगी। जीजी तिरस्कार करती और शशांक नीरद के लिए जिन सब प्रखर विशेषणों की वर्षा करता वे अपनी भाषा के कोष से बाहर के उग्र परदेशी होते तथा जरा भी सुश्राव्य न लगते।

एक जगह नीरद के साथ शशांक का स्वभाव मिलता है। शशांक का गाली देने का आवेश जब तीव्र हो उठता है तब उसकी भाषा अंग्रेज़ी हो जाती है। नीरद का उपदेश जब अत्यन्त उच्च श्रेणी का होता है तब उसकी भाषा भी अंग्रेज़ी होती है। नीरद को तब सबसे बुरा लगता है जब निमंत्रण-आमंत्रण में ऊर्मि अपनी जीजी के घर जाती है। वह वहां जाती ही नहीं, जाने के लिए बड़ा आग्रह है उसमें। उन लोगों

मानो कोई अलौकिक मायापुरी हो। मन में सवाल उठता है कि क्या सचमुच ही जीवन इतना अविचलित और कठिन है ? क्या वह इतना कृपण है; न छुट्टी देता है, न रस देता है। एकाएक मन पागल हो उठता है; कोई बड़ी शरारत करने की इच्छा होती है; मन चिल्लाकर कहता है, 'मैं यह सब कुछ नहीं मानता !'

ऊर्मिमाला

नीरद ने रिसर्च (शोध) का जो काम लिया था वह समाप्त हो गया। यूरोप के किसी वैज्ञानिक समाज को वह शोध-प्रबन्ध भेज दिया। उन लोगों ने प्रशंसा की, साथ ही एक स्कालरशिप (छात्रवृत्ति) भी दी। उसने निश्चय किया कि वहां के विश्वविद्यालय की डिग्री लेने के लिए वह समुद्र-यात्रा करेगा।

विदाई के समय कोई करुण बातचीत नहीं हुई। उसने केवल इतनी बात बार-बार कही, "मैं जा रहा हूं। मुझे बस यही आशंका है कि अब तुम अपने कर्तव्य-साधन में शिथिलता करोगी।"

ऊर्मि बोली, "आप कोई भय न कीजिए।"

नीरद ने कहा, "तुम्हें किस प्रकार चलना है, इस सम्बन्ध में एक विस्तृत नोट लिखकर दिए जा रहा हूं।"

ऊर्मि बोली, "मैं ठीक उसीके अनुसार चलूंगी।"

"किन्तु मैं तुम्हारी अलमारी की इन किताबों को अपने घर ले जाकर बन्द करके रख जाना चाहता हूं।"

"ले जाइए," कहकर ऊर्मि ने चाबी उसके हाथ में दे दी। एक बार सितार पर नीरद की दृष्टि गई किन्तु दुविधावश वह रुक गया।

अन्त में कर्तव्य की दृष्टि से नीरद को बोलना ही पड़ा, "मुझे केवल एक बात का भय है। शशांक बाबू के यहां यदि बार-बार तुम्हारा आना-जाना होता रहा तो तुम्हारी निष्ठा दुर्बल हो जाएगी,

इसमें मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं है। यह न समझो कि मैं शशांक की निन्दा कर रहा हूं। वे बड़े अच्छे आदमी हैं। व्यवसाय में वैसा उत्साह और वैसी बुद्धि कम ही बंगालियों में दिखाई पड़ती है, पर उनका एकमात्र दोष यही है कि वे किसी आइडियल (आदर्श) को नहीं जानते। सच कहता हूं, उनके बारे में प्रायः मुझे भय लगा रहता है।"

फिर तो शशांक के अनेक दोषों की बात छिड़ गई। तब अपने मन की एक दुर्भावना की बात नीरद न छिपा सका। वह बोला, "जो सब दोष आज ढके पड़े हैं, वे उम्र के साथ प्रबल रूप धारण कर प्रकट होते रहेंगे।" इतने पर भी वह मुक्त-कण्ठ से स्वीकार करता है कि वे बड़े भले आदमी हैं। किन्तु इसके साथ ही वह यह भी कहना चाहता है कि उनके संग-दोष से, उस घर के वातावरण से भी अपने को बचाए रखना ऊर्मि के लिए बहुत ज़रूरी है। ऊर्मि का मन यदि उन लोगों के मनस्तल पर उतर गया यह अधःपतन होगा।

ऊर्मि ने कहा, "आप इतने उद्विग्न क्यों हो रहे हैं?"

"क्यों उद्विग्न हो रहा हूं, सुनोगी? नाराज़ तो न होगी?"

"सत्य बात सुनने की शक्ति आपसे ही पाई है। जानती हूं, यह सरल नहीं है, फिर भी सहन कर सकती हूं।"

"तब कहता हूं, सुनो। तुम्हारे स्वभाव के साथ शशांक बाबू का स्वभाव मिलता है, इसे मैंने अच्छी तरह ध्यान देकर देखा है। उनका मन बिलकुल हलका है और वही तुम्हें अच्छा लगता है। बोलो, ठीक है या नहीं?"

ऊर्मि सोचती है, यह आदमी क्या सर्वज्ञ है? उसके जीजा उसे बहुत अच्छे लगते हैं, इसमें सन्देह नहीं। इसका प्रधान कारण यह है कि शशांक 'हा-हा' करके हंस सकता है, उत्पात करना जानता है, हंसी-मज़ाक करता है। वह ठीक-ठीक यह भी जानता है कि कौन-सा फूल और किस रंग की साड़ी ऊर्मि को पसन्द है।

ऊर्मि बोली, "हां, वे मुझे अच्छे लगते हैं।

नीरद ने कहा, "शर्मिला जीजी का प्रेम स्निग्ध गम्भीर है। उनकी
[illegible]वा एक पुण्य-कर्म है, वे कभी अपने कर्तव्य से छुट्टी नहीं लेतीं। उन्हींके
[illegible]भाव से शशांक बाबू ने एकाग्र मन से काम करना सीखा है। किन्तु
जिस दिन तुम भवानीपुर जाती हो, उसी दिन उनका नकली चेहरा हट
जाता है, तुमसे छेड़छाड़ और छीन-झपट करने लगते हैं, कभी तुम्हारे
जूड़े का कांटा निकालकर बाल बिखरा देते हैं, कभी तुम्हारी पढ़ने की
किताब छीनकर अलमारी के ऊपर रख देते हैं। जरूरी काम होने पर
भी एकाएक (तुम्हारे साथ) टेनिस खेलने का शौक प्रबल हो उठता है।"

ऊर्मि को मन ही मन मानना पड़ा कि शशांक जीजाजी इस प्रकार
की शरारतें करते रहते हैं। इसीलिए उसे इतने अच्छे लगते हैं। उनके
पास जाते ही उसका बचपन उसमें मचल उठता है। वह भी उनपर
कुछ कम अत्याचार नहीं करती। जीजी उन दोनों का ऊधम देखकर
शांत-स्निग्ध हंसी हंस देती हैं। कभी-कभी मृदु तिरस्कार भी करती
[illegible] पर वस्तुतः वह तिरस्कार का आभास-मात्र होता है।

नीरद ने उपसंहार में कहा, "जहां तुम्हें अपने स्वभाव को प्रश्रय
न मिले वहीं तुम्हें रहना चाहिए। मैं पास रहता तो चिन्ता नहीं थी
क्योंकि मेरा स्वभाव तुमसे सर्वथा विपरीत है। तुम्हारा मन रखने के
लिए तुम्हारे मन को ही चौपट कर देता, यह मुझसे कभी नहीं हो
सकता।"

ऊर्मि सिर झुकाए हुए बोली, "आपकी बात मैं सदा याद रखूंगी।

नीरद ने कहा, "मैं कुछ पुस्तकें तुम्हारे लिए रखे जाता हूं। मैं
जिन अध्यायों में निशान लगा दिए हैं उन्हें विशेष रूप से पढ़ना। अ[illegible]
वह तुम्हारे काम आएगा।"

ऊर्मि को ऐसी सहायता की आवश्यकता थी क्योंकि इधर बी
बीच में उसके मन में सन्देह उठा करता है कि प्रथम उत्साह में आ
यह कुछ भूल कर बैठी है। कदाचित् डाक्टरी उसकी प्रकृति से मेल
खाएगी।

नीरद द्वारा विहित पुस्तकें उसके लिए बड़े [illegible]

और उसे पार लगा देंगी।

नीरद के विलायत चले जाने पर [illegible] अत्याचार करना शुरू किया। कालेज [illegible] पचता है उसमे अपने को पूर्णतः [illegible] दिन के बाद कालेज से घर लौटने [illegible] ही छुट्टी पाने के लिए तरसना है, [illegible] वह अध्ययन की सांकल में बांधकर [illegible] नहीं जाता, एक ही पन्ने पर बार-बार [illegible] वह घूमता ही रहता है। तब भी वह हार नहीं [illegible] स्थित नहीं है, इसीसे उसकी दूरवर्ती [illegible] अधिक प्रभावित कर रही है।

अपने ऊपर धिक्कार का भाव तब [illegible] करते-करते पहले के दिनों की बात बार-बार याद आती है, [illegible] के दल मे उसके भक्त अनेक थे। उन दिनों किसीको उसने [illegible] की है तो किसीको और उसके मन मे आकर्षण भी हुआ है। मन में पूर्णता तब नहीं आई थी किन्तु प्यार करने की इच्छा उसके मन में मन्द वासन्ती वायु की भांति डोलती फिरती थी। तभी तो वह मन ही मन गुनगुनाया करती थी और अपनी पसन्द की कविताएं कापी मे लिख रखती थी। मन के बहुत उतावला होने पर सितार बजाने लगती थी। आजकल किसी-किसी दिन ऐसा होता है कि जब वह सान्ध्य-वेला मे कोई किताब खोलकर पढ़ने बैठती है तब उसके मन मे अकस्मात् ऐसे किसी दिन की और किसी आदमी की छवि [illegible] लगती है जिस दिन या जिन आदमी पर उसने कभी [illegible] नहीं दिया, बल्कि उन आदमी के अधिक [illegible] विरक्त हो उठा था। जान पड़ता है कि आ[illegible] की अतृप्त वेदना को छू जाता है, जिस[illegible]

जैसे फूल को वसन्त का स्पर्श दे जाते हैं।

इन सब विचारों को वह जितने वेग के साथ मन से दूर करना चाहती है, प्रतिघात से वे उतने ही वेग के साथ उसके मन में लौटकर घूमते रहते हैं। नीरद का एक फोटोग्राफ उसने डेस्क पर लगा दिया है। उसकी ओर टकटकी लगाकर देखती रहती है। उसके मुख पर बुद्धि की दीप्ति है, आग्रह का चिह्न नहीं है। उसे वह अपने पास बुलाता ही नहीं, तो उसका मन जवाब दे किसे ? मन ही मन में वह सिर्फ यही जपती रहती है, 'कैसी प्रतिभा है, कैसी तपस्या है, कैसा निर्मल चरित्र है, मेरा कैसा अचिन्त्य सौभाग्य ?'

यहां यह कह देना भी आवश्यक है कि एक बात में नीरद की जीत हुई है। नीरद के साथ ऊर्मि का विवाह-सम्बन्ध निश्चित हो जाने पर शशांक तथा और भी संदिग्धमना दस-पांच लोगों ने उपहास किया था। कहते थे, "राजाराम बाबू सीधे आदमी हैं, झट समझ बैठे कि नीरद आदर्शवादी है। उसका आदर्शवाद ऊर्मि की थैली में गुप-चुप ... प्रकार अंडे दे रहा है, इस बात को क्या लम्बे-लम्बे साधु-वाक्यों से ढंका जा सकता है ? अपने को बलिदान जरूर कर रहा है, परन्तु वह बलिदान जिस देवता के लिए है—उसका मन्दिर है इम्पीरियल बैंक में ! हम लोग सीधे-सादे ससुर से कह देते हैं कि रुपयों की ज़रूरत है और वे रुपये व्यर्थ नहीं जाएंगे, उन्हीं की कन्या की सेवा में खर्च होंगे। नीरद महान पुरुष है, कहता है कि महत् उद्देश्य के लिए ही व्याह करेगा ! उसके बाद उस उद्देश्य का रोज़-रोज़ अनुवाद करता रहेगा ससुर की चैकबुक पर !"

नीरद जानता था कि ऐसी चर्चा अपरिहार्य है। ऊर्मि से बोला, "मेरे व्याह करने में एक शर्त है। तुम्हारे रुपयों में से मैं एक पैसा न लूंगा, अपनी कमाई ही मेरा सहारा होगी।" ससुर ने स्वयं उसे यूरोप भेजने का प्रस्ताव किया था पर वह किसी तरह राजी नहीं हुआ। इसके लिए उसे बहुत दिनों तक इन्तज़ार करना पड़ा। राजा-

राम बाबू को बतला दिया था, "अस्पताल-निर्माण के लिए जितने भी रुपये आप देना चाहें, वे सब अपनी लड़की के नाम से दें। मैं जब उस अस्पताल का भार उठाऊंगा तो उसके लिए कोई वृत्ति नहीं लूंगा। मैं डाक्टर हूं, जीविका के लिए मुझे कोई चिन्ता नहीं है।"

उसकी ऐसी एकान्त निस्पृहता देखकर उसपर राजाराम की भक्ति दृढ़ हो गई तथा ऊर्मि ने भी बड़ा गर्व अनुभव किया। इस गर्व का उचित कारण होने से ही शर्मिला का मन नीरद से एकदम फिर गया। बोलीं, "हिश! देखूंगी यह दिमाग कब तक रहता है!" इसके बाद तो ऐसा हो गया कि जब नीरद अभ्यासवश बड़ी गम्भीरता के साथ कोई बात करने लगता तो बात के बीच में ही उठकर शर्मिला, गर्दन टेढ़ी किए कमरे से बाहर चली जातीं। उसकी पदचाप कुछ दूर तक सुनाई पड़ती रहती। ऊर्मि के खयाल से कुछ बोलती नहीं परन्तु उसके कुछ न कहने की व्यंजना काफी तेजोत्तप्त होती।

शुरू-शुरू में नीरद हर डाक में चार-चार, पांच-पांच पन्ने के पत्रों में विस्तृत उपदेश लिखकर भेजता रहा। कुछ दिन बाद एकाएक चौंकानेवाला एक तार भेजा। उसमें अध्ययन के लिए एक बड़ी रकम मांगी गई थी। जो गर्व, इतने दिनों से, ऊर्मि का प्रधान अवलम्ब था, उसे गहरी चोट लगी किन्तु उसे कुछ सात्वना भी मिली। ज्यों-ज्यों दिन जाने लगे और नीरद की अनुपस्थिति लम्बी होने लगी त्यों-त्यों ऊर्मि का पूर्व-स्वभाव कर्तव्य की चारदीवारी से निकल भागने की राह खोजने लगा। वह अपने को अनेक प्रकार से धोखा भी देती, फिर अनुताप भी करती। ऐसी आत्मग्लानि के समय नीरद को आर्थिक सहायता देना उसके पश्चात्ताप-दग्ध मन के लिए सान्त्वनाजनक था।

ऊर्मि ने तार मैनेजर के हाथ में देते हुए संकोचपूर्वक कहा, "काका बाबू, रुपये···"

मैनेजर बाबू ने कहा, "कुछ गोरखधन्धा मालूम पड़ता है। हम लोग तो समझते थे कि रुपये उस पक्ष के लिए अस्पृश्य हैं।"

रद को पसन्द नहीं करते थे।

ऊर्मि बोली, "किन्तु विदेश में..." पर बात पूरी न कह सकी।

काका बाबू बोले, "मैं जानता हूं कि इस देश का स्वभाव विदेश की मिट्टी में बदला भी जा सकता है, किन्तु क्या हम लोग उनसे ताल मिलाकर चल भी सकेंगे?"

ऊर्मि बोली, "रुपये न पाने से वे विपत्ति में पड़ सकते हैं।"

"बहुत अच्छा, भेजे देता हूं। तुम ज्यादा चिन्ता मत करो। किन्तु इतना कहे देता हूं कि यह तो शुरू हुआ है, यही अन्त नहीं है।"

'अन्त नहीं है' इसका प्रमाण थोड़े ही दिनों में मिल गया। इस बार और बड़ी रकम की मांग थी। इस बार की आवश्यकता स्वास्थ्य-रक्षा के लिए थी। मैनेजर ने गम्भीर मुंह बनाकर कहा, "शशांक बाबू से परामर्श कर लेना अच्छा होगा।"

ऊर्मि घबराकर बोल उठी, "और चाहे जो कीजिए, परन्तु जीजी तक यह खबर न पहुंचने पाए।"

"अकेले यह ज़िम्मेदारी उठाना ठीक नहीं लगता।"

"एक दिन तो रुपया सब उन्हींके हाथ पड़ेगा।"

"पड़ने के पूर्व देखना होगा कि वह पानी में न जा पड़े।"

"किन्तु उनके स्वास्थ्य का खयाल तो रखना ही पड़ेगा।"

"अस्वास्थ्य भी बहुत तरह का होता है। यह ठीक किस तरह का है, मेरी समझ में नहीं आ रहा है। यहां लौट आएं तो कदाचित् वायु-परिवर्तन से स्वस्थ हो जाएं। वापसी यात्रा की व्यवस्था करके बुला लेना चाहिए।"

वापस बुलाने के प्रस्ताव से ऊर्मि इतनी ज्यादा विचलित हो उठी कि अपने को ही नीरद के उच्च उद्देश्य में बाधक समझ बैठी।

काका बोले, "इस बार तो रुपया भेजे देता हूं किन्तु मेरी समझ से तो इससे डाक्टर बाबू का स्वास्थ्य और बिगड़ जाएगा।"

मैनेजर राधागोविन्द दूर के नाते से ऊर्मि के आत्मीय लगते हैं।

इसीलिए उन्होंने अपनी बात में जो संकेत किया वह उसे चुभ गया। मन में सन्देह पैदा हुआ। सोचने लगी, 'जीजी से कहना ही पड़ेगा।' और अपने को धक्का देकर बार-बार प्रश्न करने लगी, 'मुझे यथोचित दुःख क्यों नहीं हो रहा है ?'

इसी समय शर्मिला की बीमारी को लेकर मन में चिन्ता उठने लगी। भाई की बात याद करके उसे भय लगने लगा। अनेक डाक्टर अनेक दिशाओं से उसकी बीमारी के वासस्थान या जड़ का पता लगाने में लगे थे। शर्मिला क्लान्त हंसी हंसती हुई बोली, "सी० आई० डी० के हाथों से अपराधी तो निकल भागेगा, मरेगा बेचारा निरपराध।"

शशांक ने चिन्तित मुख से कहा, "शरीर की खानातलाशी शास्त्र-मत से ही चलने दो, भुगतने या मरने की कोई बात नहीं है।"

और उसी समय शशांक के हाथ में दो भारी काम आ गए। एक था गंगा-तट पर जूट मिल का, दूसरा टालीगंज की तरफ, मोरपुर के जमींदार के नूतन उद्यान-भवन के निर्माण का। जूट-मिल की कुली-बस्ती का काम पूरा कर देने की अवधि थी तीन मास की। कई स्थानों पर ट्यूबवैल भी बिठाने थे। शशांक को जरा भी फुर्सत नहीं थी। शर्मिला की बीमारी के कारण अक्सर उसे रुक जाना पड़ता। परन्तु काम के लिए उत्कण्ठा बनी रहती।

उनका विवाह हुए इतने दिन हो गए, किन्तु ऐसी बीमारी शर्मिला को कभी नहीं हुई जिसके कारण शशांक को विशेष चिन्ता करनी पड़ी हो। इसीलिए इस बार की बीमारी के उद्वेग से उसका मन बच्चों की तरह छटपटाने लगा। काम-काज से लौटकर वह शय्या के पास निरुपाय भाव से बैठ जाता। माथे पर हाथ फेरता हुआ पूछता, "कैसी तबीयत है ?" शर्मिला उत्तर देती, "तुम व्यर्थ चिन्ता न करो, मैं अच्छी हूं।" इसपर विश्वास तो नहीं होता किंतु विश्वास करने की एकांत इच्छा होने के कारण शशांक अविलम्ब विश्वास करके छुट्टी पा जाता।

शशांक बोला, "ढेनकनाल के राजा का एक बड़ा काम मेरे हाथ
ाया है। प्लैन के विषय में दीवान से बात करनी पड़ेगी। जितनी
ल्दी संभव होगा, वापस आऊंगा, डाक्टर आने के पहले ही लौट
ाऊंगा।"

शर्मिला ने उलाहना देते हुए कहा, "तुम्हें मेरे सिर की कसम, जल्दबाजी में काम न चौपट कर देना। मैं समझ रही हूं कि तुम्हें वहां (ढेनकनाल) भी जाने की आवश्यकता है। जरूर जाओ, न जाने से मैं अच्छी नहीं होऊंगी। मेरी देख-रेख करने के लिए यहां बहुत आदमी हैं।"

एक प्रकांड ऐश्वर्य अर्जित करने का संकल्प शशांक के मन में दिन-रात घूमा करता है। वस्तुतः ऐश्वर्य की ओर नहीं, बड़ा आदमी होने की ओर उसका आकर्षण है। कोई चीज गढ़ डालना ही पुरुष ...षित्व है। धन को तुच्छ मानकर उसकी अवज्ञा करना तभी ...भव है जब तक उससे किसी प्रकार दिन बिताना पड़ता है। ...ु जब उसकी चोटी को बहुत ऊंचाई पर पहुंचा दिया जाता है ...ब सर्वसाधारण उसके प्रति सम्मान प्रकट करने लगते हैं। भले उससे अपना उपकार न हो, उसका बड़प्पन देखने-मात्र से चित्त में स्फूर्ति होती है। शर्मिला के सिरहाने बैठे शशांक के मन में जब उद्वेग चलता रहता, उन्हीं क्षणों में वह यह भी सोचे बिना नहीं रह पाता कि उसके काम-काज की दुनिया में अनिष्ट की आशंका किस स्थान पर घटित हो रही है। शर्मिला जानती है कि शशांक की यह चिन्ता कृपण की चिन्ता नहीं है बल्कि अपनी अवस्था के निम्नतल से ऊपर की ओर चिनते हुए जयस्तंभ निर्माण करने के पौरुष की चिन्ता है। शशांक के इस गौरव से शर्मिला गौरवान्वित है। वही स्वामी उसकी बीमारी की सुश्रूषा के कारण अपने काम-काज में लापरवाही करें, यह बात उसको अपने लिए सुखकर होने पर भी अच्छी नहीं लगती। इसीलिए वह शशांक को बार-बार काम पर भेजती रहती है।

इस दिशा में अपने कर्तव्य के सम्बन्ध में शर्मिला की चिन्ता की सीमा नहीं है। वह स्वयं तो बिछौने पर पड़ी है, नौकर-चाकर क्या करते होंगे, कौन जाने! इसमें सन्देह नहीं कि रसोई में घी नष्ट होता होगा, स्नानघर में समय पर गर्म पानी रखने में भूल होती होगी, बिछौने की चादर समय पर न बदली जाती होगी, मेहतर की झाड़ू नाली में नियमित रूप से नहीं फिरती होगी। धोबी के यहां से आए कपड़े लिखित सूची से मिलाए बिना ले लेने से उनमें जो उलट-पलट होता होगा वह तो मालूम ही है। शर्मिला से रहा नहीं जाता, चुपके से बिछौना छोड़कर घर सभालने चल देती है, जिससे वेदना बढ़ जाती है, बुखार आ जाता है और डाक्टर की समझ में नहीं आता कि यह क्या हो गया।

अन्त में ऊर्मिमाला को उसकी जीजी ने बुला भेजा। बोली, "बहिन! कुछ दिन के लिए तू कालेज छोड़कर मेरे घर की रक्षा कर; नहीं तो मैं निश्चित होकर मर भी नहीं सकूंगी।"

जो इस इतिहास को पढ़ रहे होंगे वे इस स्थान पर मुस्कराके कहेंगे, "समझ लिया!" समझने के लिए ज्यादा अक्ल की जरूरत नहीं। जो होनी है, वही होती है, और वही यथेष्ट है। और मन में यह समझने का भी कारण नहीं कि भाग्य का खेल ताश के पत्तों की तरह छिपे-छिपे, और शर्मिला की आंखों में धूल डालकर चलता रहेगा।

'जीजी की सेवा करने जा रही हूं,' यह सोचकर ऊर्मि के मन में बड़ा उत्साह हुआ। इस कर्तव्य के लिए अन्य सब काम एक ओर हटा देना होगा। और उपाय ही नहीं है। इसके अलावा तीमारदारी का यह काम भविष्य के डाक्टरी के काम से ही सम्बन्धित है, यह तर्क

अपने मतानुसार। ऐसे ही स्वामी के पालन की जिम्मेदारी इतने दिनों से शर्मिला आनन्दपूर्वक निभाती चली आ रही है।

इतना समय कट गया। अपने को अलग करके शशांक की दुनिया की कल्पना ही शर्मिला नहीं कर सकती। आज भय हो रहा है कि कहीं वीच में यमदूत आकर जगत् और जगद्धात्री के वीच विच्छेद न कर दें। यही क्यों, उसे तो आशंका है कि मृत्यु के वाद भी शशांक की शारीरिक असावधानी उसकी विदेही आत्मा को शान्ति न पाने देगी। भाग्य से ऊर्मि है किन्तु वह उसकी तरह शांत नहीं है। फिर भी उसके वदले काम-काज तो चलाए जा रही है। वह काम भी तो स्त्रियों के हाथ से किए जाने वाला ही काम है। इन स्निग्ध हाथों का स्पर्श न हो तो पुरुषों के दैनिक जीवन के प्रयोजन में कुछ रस ही नहीं रह जाता और सव कुछ एक प्रकार से श्रीहीन हो जाता है। इसीलिए जब अपने सुन्दर हाथों से छुरी लेकर सेव से छिलके उतारती और उन्हें काट-काटकर रखती है, नारंगी की फांक निकालकर सफेद पत्थर की तश्तरी में लगाती है और वेदाना अनार छीलकर उसके दाने-दाने को एकत्रित कर सजा देती है तव शर्मिला अपनी वहिन में अपने को ही पा जाती है। विछौने पर पड़ी-पड़ी सदा ही उससे काम की फर्माइश करती रहती है।

"उनका सिगरेट-केस तो भर दे, ऊर्मि!"

"देख तो, उन्हें मैले रूमाल को बदलने का खयाल नहीं होगा।"

"जरा देख तो, जूतों में सीमेंट-वालू जम गई होगी। वेयरे को हुक्म देकर साफ करवा लेने का भी होश नहीं।"

"अरी वहिन, जरा तकियों के गिलाफ तो वदल दे।"

"इन रद्दी कागजों को टोकरी में डाल दे।"

"एक वार आफिसवाला कमरा तो देख आ, ऊर्मि! मुझे निश्चय है कि वे कैश-वाक्स की चावी डेस्क के ऊपर ही छोड़कर चले गए होंगे।"

"याद रखना, फूलगोभी के पौधे लगाने का समय आ गया है।"

"माली से बोल दे कि गुलाब की डालियाँ छाँट दे।"

"देखो, कोट के पीछे चूना लग गया है। इतनी जल्दी किसलिए है, जरा ठहरो न! ऊर्मि, जरा ब्रुश तो कर दे, बहिन!"

ऊर्मि पुस्तक-पढ़ी लड़की है, काम करने वाली लड़की नहीं, फिर भी उसे इसमें मजा आता है। जिन कठोर नियमों के बीच में वह थी, उनमें से बाहर आने के बाद सारे ही काम-काज उसे अनियम-में ही मालूम पड़ते हैं। इस घर-गृहस्थी की कर्म-धारा के भीतर ही भीतर जो उद्वेग है, साधना है, वह तो उसके मन में है नहीं। उस चिन्ता का सूत्र है उसकी जीजी के बीच। इसी हेतु ऊर्मि के लिए यह सब काम खेल-से लगते हैं। एक प्रकार की छुट्टी है। उद्देश्यहीन उद्योग। वह इतने दिनों तक जहां थी, यह उससे अलग ही एक स्वतन्त्र जगत् है; यहां उसके सामने कोई लक्ष्य तर्जनी दिखानेवाला नहीं है, फिर भी दिन काम में भरे हुए हैं और वह काम-काज भी विचित्र ही है। भूल हो, त्रुटि हो, पर उसके लिए कोई खास जवाबदेही नहीं है। जीजी यदि कभी कुछ तिरस्कार करने की चेष्टा करती भी हैं तो शशांक उसे हंसकर उड़ा देता है, जैसे ऊर्मि की भूलों में कोई विशेष रस हो। वस्तुतः आजकल इस घर से दायित्व का गांभीर्य दूर हो गया है, एक ऐसी शिथिल अवस्था आ गई है कि भूल-चूक की कोई परवाह नहीं। इसीमें शशांक को बड़ा आराम और प्रसन्नता है। उसे लगता है जैसे कोई 'पिकनिक' चल रहा हो और जब देखता है कि ऊर्मि किसी बात से चिन्तित नहीं, दुःखित नहीं, लज्जित नहीं, सदा उत्साहित रहती है तो शशांक के मन से उसका गुरुभार और कर्म की पीड़ा हल्की हो जाती है। काम पूरा होने, यहां तक कि न होने पर भी शशांक का मन घर लौट आने के लिए उत्सुक हो उठता है।

यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि ऊर्मि काम-काज में हो-यार नहीं। फिर भी ध्यान देने पर एक बात दिखाई देती है

अपने मतानुसार। ऐसे ही स्वामी के पालन की जिम्मेदारी इतने दिनों से शर्मिला आनन्दपूर्वक निभाती चली आ रही है।

इतना समय कट गया। अपने को अलग करके शशांक की दुनिया की कल्पना ही शर्मिला नहीं कर सकती। आज भय हो रहा है कि कहीं बीच में यमदूत आकर जगत् और जगद्धात्री के बीच विच्छेद न कर दें। यही क्यों, उसे तो आशंका है कि मृत्यु के बाद भी शशांक की शारीरिक असावधानी उसकी विदेही आत्मा को शान्ति न पाने देगी। भाग्य से ऊर्मि है किन्तु वह उसकी तरह शांत नहीं है। फिर भी उसके बदले काम-काज तो चलाए जा रही है। वह काम भी तो स्त्रियों के हाथ से किए जाने वाला ही काम है। इन स्निग्ध हाथों का स्पर्श न हो तो पुरुषों के दैनिक जीवन के प्रयोजन में कुछ रस ही नहीं रह जाता और सब कुछ एक प्रकार से श्रीहीन हो जाता है। इसीलिए जब अपने सुन्दर हाथों से छुरी लेकर सेब से छिलके उतारती और उन्हें काट-काटकर रखती है, नारंगी की फांक निकालकर सफेद पत्थर की तश्तरी में लगाती है और बेदाना अनार छीलकर उसके दाने-दाने को एकत्रित कर सजा देती है तब शर्मिला अपनी बहिन में अपने को ही पा जाती है। बिछौने पर पड़ी-पड़ी सदा ही उससे काम की फर्माइश करती रहती है।

"उनका सिगरेट-केस तो भर दे, ऊर्मि!"

"देख तो, उन्हें मैले रूमाल को बदलने का खयाल नहीं होगा।"

"ज़रा देख तो, जूतों में सीमेंट-बालू जम गई होगी। बेयरे को हुक्म देकर साफ करवा लेने का भी होश नहीं।"

"अरी बहिन, ज़रा तकियों के गिलाफ तो बदल दे।"

"इन रद्दी कागजों को टोकरी में डाल दे।"

"एक बार आफिसवाला कमरा तो देख आ, ऊर्मि! मुझे निश्चय है कि वे कैश-बाक्स की चाबी डेस्क के ऊपर ही छोड़कर चले गए होंगे।"

"मैं उसे खूब पहचानती हूं। आप उस दिन बाहर गए थे। वह अकेला बरामदे में बैठा हुआ था। मैंने ही उसे तरह-तरह की बातों में भुला रखा था। बीकानेर का रहने वाला है, उसकी स्त्री मच्छर-दानी में आग लग जाने से मर गई है, अब दूसरे ब्याह के फेर में है।"

"तब तो वह हिसाब लगाकर ऐसे ही समय से आया करेगा जब मैं घर से बाहर जाया करूंगा; जब तक स्त्री का ठिकाना नहीं होता तब तक उसका सपना यहां जमेगा।"

"आप मुझे बता जाया कीजिए कि उससे क्या काम निकालना है। उसके भाव देखकर जान पड़ता है, मैं उससे काम निकाल सकूंगी।"

आजकल शशांक के लाभ के खाते में निन्यानवे के ऊपर जो बड़े अंक गतिशील अवस्था में हैं, बीच-बीच में यदि उनकी गति रुक जाती है, तो भी उसके कारण पहले की तरह झुंझला उठनेवाली चंचलता उसमें दिखाई नहीं पड़ती। शाम के समय सुनने के लिए रेडियो के पास बैठने का उत्साह शशांक मजूमदार में अब तक नहीं दिखाई पड़ा था। आजकल जब ऊर्मि उसे वहां खींच लाती है तब यह बात न उसे बुरी लगती है, न उसमें समय व्यर्थ जाता मालूम पड़ता है। हवाई जहाज की उड़ान देखने के लिए एक दिन भोर में उसे दमदम तक जाना पड़ा। उसका मुख्य आकर्षण वैज्ञानिक कौतूहल नहीं था, और न्यूमार्केट शापिंग करने जाने का उसके लिए यह पहला ही अनुभव था। इसके पहले बीच-बीच में मांस-मछली, फल-फूल, शाक-भाजी खरीदने के लिए शर्मिला ही वहां जाती थी। वह जानती थी कि यह काम खास तौर से उसीके विभाग का है। इस काम में शशांक उसे सहयोग देगा, ऐसी बात कभी उसके मन में नहीं आई, उसने कभी इच्छा भी नहीं की। परन्तु ऊर्मि तो खरीदने नहीं जाती, केवल चीजों को उलटने-पलटने जाती है, चीजें उठाती और दाम पूछकर रह जाती है। शशांक यदि वह चीज खरीद देना चाहता है तो उसके रुपयों का [illegible] छीनकर अपने बटुए में रख लेती है।

शशांक के काम-काज के दर्द को ऊर्मि बिलकुल नहीं समझती। कभी-कभी अत्यन्त बाधा उपस्थित करने पर वह शशांक से तिरस्कृत भी हुई है, किन्तु उसका फल इतना शोकजनक हुआ है कि उसके दुःख को दूर करने के लिए शशांक को अपना पूरा समय लगाना पड़ा है। एक ओर ऊर्मि की आंखों में वाष्प-संचार, दूसरी ओर अपरिहार्य काम की जल्दी। ऐसे संकट में पड़कर अन्त में घर के बाहरी कमरे में ही बैठकर सब काम-काज निबटाना पड़ता है। किन्तु अपराह्न के बाद वहां रहना भी दुस्सह हो जाता है। जिस दिन किसी कारण से ज्यादा देरी हो जाती है, उस दिन ऊर्मि रूठकर ऐसा दुर्भेद्य मौन साध लेती है कि उसे मनाना मुश्किल हो जाता है। ऊर्मि के रुद्ध आंसुओं के कोहरे में छिपे अभिमान का अनुभव कर भीतर ही भीतर शशांक को आनन्द होता है। वह भले मानस की तरह कहता है, "ऊर्मि! बात-चीत न करने और मौन रहने के इस सत्याग्रह की रक्षा करना ही तुम्हारे लिए उचित है, परन्तु दुहाई है धर्म की, न खेलने का प्रण तो तुमने किया नहीं था।" उसके बाद टेनिस हाथ में लेकर दोनों चल पड़ते। खेल में शशांक विजय के निकट पहुंचकर भी अपनी इच्छा से हार जाता। फिर दूसरे दिन सुबह उठकर नष्ट हुए समय के लिए पश्चात्ताप करता।

किसी छुट्टी के दिन दोपहरी के पश्चात् जब शशांक दाहिने हाथ में लाल-नीली पेंसिल लेकर बायें हाथ की उंगलियां अकारण अपने बालों में इधर-उधर फेरता आफिस की डेस्क पर बैठा किसी कठिन काम में लगा होता तो ऊर्मि आकर कहती, "मैंने आपके उस दलाल से तय किया है कि वह आज हमें पारसनाथ का मन्दिर दिखाने ले जाएगा। जीजाजी, आप भी हमारे साथ चलिए।"

शशांक विनती करके कहता, "नहीं भई, आज नहीं। इस समय मेरा उठना ठीक नहीं होगा।"

काम के गुरुत्व से ऊर्मि को जरा भी डर नहीं लगता। कहती,

"अबला रमणी को अरक्षित अवस्था में हरी पगड़ीवाले के हाथ दे देने में तुम्हें जरा भी संकोच नहीं ! यही है तुम्हारी 'शिवलरी'?"

अन्त में उसकी जबरदस्ती से शशांक काम छोड़कर उसे मोटर हाँककर ले जाता है। इस प्रकार के उत्पात की खबर पाकर शर्मिला बहुत बिगड़ती है क्योंकि उसके मत से पुरुषों के साधन-क्षेत्र में स्त्रियों का अनधिकार प्रवेश किसी प्रकार क्षम्य नहीं। शर्मिला ऊर्मि को बराबर बच्ची ही समझती आई है। आज भी वही धारणा उसके मन में बनी हुई है। भले वह बच्ची हो, पर आफिस कोई बच्चों के खेलने की जगह नहीं है। इसलिए ऊर्मि को बुलाकर कठोरतापूर्वक उसका काफी तिरस्कार करती है। उस तिरस्कार का निश्चित फल भी हो सकता था, किन्तु पत्नी का क्रुद्ध कण्ठ-स्वर सुनकर शशांक स्वयं दरवाजे के बाहर आ खड़ा होता और ऊर्मि को आश्वासन देकर आँख का इशारा करता रहता है। ताश की गड्डी दिखाकर इशारा करता जिसका भाव यह होता कि 'चली आओ, आफिस के कमरे में बैठकर तुम्हें 'पोकर' का खेल सिखाएंगे।' उसके पास खेलने का समय बिलकुल न रहना, खेलने की बात भी मन में लाने का अवसर और अभिप्राय उसका न होता। पर जीजी की कठोर भर्त्सना से ऊर्मि के मन में चोट लगी होगी, इसलिए ऐसा करता है। वह स्वयं अनुनय यहाँ तक कि किंचित् तिरस्कार करके भी, ऊर्मि को अपने काम-काज के क्षेत्र से हटा देना चाहता, किन्तु इस बात को लेकर शर्मिला ऊर्मि पर शासन करे, इसे सहन करना उसके लिए बड़ा कठिन हो जाता है।

शर्मिला शशांक को बुलाकर कहती, "तुम उसके प्रत्येक हठ को इस तरह बर्दाश्त करते रहोगे तो कैसे काम चलेगा? समय-असमय नहीं देखने से तुम्हारे काम-काज को नुकसान पहुँचता है।"

शशांक कहता, "अभी बच्ची है। यहाँ उसका कोई संगी नहीं है,

जरा हंसी-खेल करने नहीं पाएगी तो जीती वचेगी कैसे ?"

यह तो हुआ नाना प्रकार का वचपन। पर उधर शशांक जव किसी मकान का नक्शा लेकर वैठता तो वह उसके पास पहुंचकर कुर्सी खींचकर वैठ जाती और कहती, "मुझे समझा दो।" समझाने पर सरलता से समझ जाती, गणित के नियम उसे जटिल न मालूम पड़ते। शशांक वहुत खुश होकर उसे 'प्राव्लम' देता; वह उसे हल करके ले आती। जूट-कम्पनी के स्टीमलांच पर शशांक काम देखने जाता, तव वह ज़िद करती कि मैं भी चलूंगी। सिर्फ साथ जाती ही नहीं, नापजोख के हिसाव के विपय में तर्क करती। शशांक पुलकित हो उठता। भरपूर कविता से इसमें रस अधिक है। इसलिए जव चेम्वर का काम घर ले आता है तो उसको लेकर उसके मन में आशंका नहीं रहती। लाइन खींचकर नक्शा वनाने के काम में उसे एक साथी मिल गया है। ऊर्मि को पास विठाकर समझाता हुआ काम करता है। तेज़ी से आगे नहीं वढ़ पाता, परन्तु समय की दीर्घता सार्थक होती है।

इस प्रकार की वातों से शर्मिला को वड़ा धक्का लगता। ऊर्मि के लड़कपन को भी वह समझती है, उसके गृहिणीत्व की त्रुटियों को भी वह स्नेहपूर्वक सह लेती है, परन्तु व्यवसाय के क्षेत्र में पति के साथ स्त्री-वुद्धि के दूरत्व को जव स्वयं अपने लिए अनिवार्य मान लिया है तव वहां ऊर्मि की वेरोकटोक गतिविधि उसे कैसे अच्छी लग सकती है ? यह तो विलकुल होड़ की वात है। अपनी-अपनी सीमा मानकर चलने को ही गीता ने स्वधर्म कहा है।

मन ही मन वड़ी अधीर होकर एक दिन ऊर्मि से पूछा, "ऊर्मि ! क्या तुझे यह सव लेखाजोखा, आंकड़े ट्रेस करना, सचमुच अच्छा लगता है ?"

"हां जीजी ! हमें वहुत अच्छा लगता है।"

शर्मिला ने अविश्वास के स्वर में कहा, "हां रे लगता है तुझे

! उन्हें खुश करने के लिए यह प्रकट किया करती है कि अच्छा
है।"

नहीं है तो यही सही। शर्मिला के मन में भी तो यही रहा है कि
समय पर खिला-पहनाकर और सेवा-जतन करके ऊर्मि शशांक
प्रसन्न रखे। किन्तु इस प्रकार की खुशी उसकी अपनी खुशी के
य न जाने क्यों मेल नहीं खा रही है।

शशांक को बार-बार बुलाकर कहती, "उसे लेकर तुम समय क्यों
ष्ट करते हो? इससे तुम्हारे काम में नुकसान होता है। वह अभी
बालिका है, यह सब क्या जाने!"

शशांक कहता है, "वह मुझसे कम नहीं समझती।"

वह समझता है कि ऊर्मि की प्रशंसा से उसकी जीजी को आनन्द
होता होगा। नासमझ!

अपने काम के गौरव में शशांक ने जब अपनी पत्नी की ओर से
ध्यान शिथिल कर लिया था तब शर्मिला ने उसे बेबसी के साथ मान
लिया हो, ऐसी बात नहीं थी; उसने इसमें गर्व का ही अनुभव किया
था। इसलिए उसने आजकल अपने सेवापरायण हृदय के दावे को
बहुत कम कर लिया है। वह कहती है कि पुरुष मानुष राजा की
जाति है; उसे दुस्साध्य कर्म के अधिकार को सदा ही प्रशस्त करते
रहना होगा। नहीं तो वह स्त्रियों से भी नीचा हो जाएगा। क्योंकि
स्त्रियां अपने स्वाभाविक माधुर्य और प्रेम के जन्मजात ऐश्वर्य द्वारा
ही घर-गृहस्थी में प्रतिदिन अपने स्थान को सहज ही सार्थक कर
हैं। किन्तु पुरुष अपने को सार्थक करता है—प्रतिदिन के संघर्ष
युद्ध के द्वारा। किसी जमाने में राजा लोग बिना प्रयोजन के ही र
का विस्तार करने के लिए निकलते थे। ऐसा वे राज्यलोभ के
नहीं, वरन् पौरुष के गौरव को नये सिरे से प्रतिष्ठा करने के
ही करते थे। इस गौरव में स्त्रियों को बाधा नहीं देनी चा
शर्मिला ने स्वयं कभी बाधा नहीं दी। ... र्वक उसने शशां

लिए अपना उद्देश्य-साधन करने का रास्ता छोड़ दिया है। किसी समय उसने उसे अपने सेवा-जाल में उलझा लिया था; मन में बहुत दुःख पाने पर भी उस जाल को धीरे-धीरे समेट रही है। अब भी वह काफी सेवा करती है, पर वह सेवा अदृश्य, परदे में छिपी ही रह जाती है।

हाय रे, उसके स्वामी का यह कैसा पराभव दिन-दिन प्रकट होता जा रहा है। रोगशय्या पर से वह सब कुछ देख नहीं पाती, किन्तु यथेष्ट आभास पा जाती है। वह शशांक का मुख देखते ही समझ जाती है कि आजकल सदा ही वे कैसे एक आवेश में रहते हैं। ज़रा-सी लड़की ने आकर इन चन्द दिनों में ही इतनी उच्च साधना के आसन से कर्मठ पुरुष को विचलित कर दिया है। आज शर्मिला को उसके स्वामी की यह अश्रद्धेयता उसकी बीमारी की पीड़ा से भी दुःख दे रही है।

इसमें सन्देह नहीं कि शशांक के आहार-विहार और वेशभूषा की से चली आती हुई व्यवस्था में अनेक प्रकार की त्रुटियां हो रही हैं। जो चीजें उसे ज़्यादा अच्छी लगती हैं, खाने के समय दिखाई पड़ता है कि वे ही उपस्थित नहीं हैं। उसकी कैफियत मिल जाती है पर इस घर में कैफियत को कभी कोई महत्त्व नहीं दिया गया। ये सब असावधानताएं पहले कठोर दण्ड के योग्य समझी जाती थीं। और आज उसी कायदे-कानून से बंधे घर में इतना बड़ा युगान्तर हो रहा है कि बड़ी से बड़ी गलतियां प्रहसन की मनोविनोद-सामग्री बनकर रह जाती हैं। इसका दोष किसे दिया जाए? जीजी के निर्देश के अनुसार ऊर्मि जब रसोईघर में बेंत के मूढ़े पर बैठी, पाक-प्रणाली के संचालन में लगी होती और साथ-साथ पाचिका महाराजिन के पूर्व-जीवन की कहानी भी चलती रहती तब शशांक अकस्मात् आकर कहता, "अभी यह सब रहने दो।"

"क्यों, क्या करना है?"

"इस समय मुझे छुट्टी है। चलो, विक्टोरिया मेमोरियल बिल्डिंग देख आएं। उसका गर्व देखकर हंसी क्यों आती है, यह भी तुम्हें समझा दूंगा।"

इतने बड़े प्रलोभन से ऊर्मि का मन भी कर्तव्य की उपेक्षा करने के लिए तत्क्षण चंचल हो उठता है। शर्मिला जानती कि रसोईघर से उसकी सहोदरा के हट जाने के कारण भोजन की श्रेष्ठता में कोई कमी नहीं आएगी, तब भी स्निग्ध हृदय से शशांक के आराम को कुछ न कुछ घटा तो वह सकती ही है, यह भाव मन में बना रहता। किन्तु आराम की बात करने से फायदा ही क्या है; जबकि रोज ही स्पष्ट दिखाई देता है कि आराम का वह महत्त्व नहीं रह गया है और स्वामी इस स्थिति में खुश हैं।

इन बातों के कारण शर्मिला के मन में अशान्ति बढ़ गई। रोग-शय्या पर इस ओर से उस ओर बार-बार करवट बदलती हुई कहती, 'मरने के पहले यह बात समझ में आई कि मैंने उनके लिए सब कुछ किया, केवल खुश न कर सकी। सोचा था ऊर्मिमाला में अपने को ही देख पाऊंगी; किन्तु वह तो मैं नहीं हूं, वह तो एक बिलकुल ही जुदा लड़की है।' खिड़की के बाहर टकटकी लगाए सोचती, 'मेरी जगह वह नहीं ले सकती और उसकी जगह मैं नहीं ले सकती। मेरे चले जाने से क्षति होगी, किन्तु उसके चले जाने से तो सब शून्य हो जाएगा, सब कुछ चला जाएगा।'

सोचते-सोचते एकाएक याद आ गई कि ठंड के दिन आ रहे हैं गर्म कपड़ों को धूप में डालना चाहिए। उस समय ऊर्मि शशांक के सा पिंगपांग खेल रही थी। उसे बुला भेजा।

बोली, "ऊर्मि ! यह ले चाबी। गर्म कपड़े निकलवाकर छत प धूप में डलवा दे।"

ऊर्मि ने आलमारी में चाबी लगाई ही थी कि इतने में शशांक ने आकर कहा, "यह सब पीछे होता रहेगा अभी बहुत समय है। च

खेल पूरा हो जाने दो।"

"किन्तु जीजी……"

"अच्छा, जीजी से मैं छुट्टी लिए आता हूं।"

जीजी ने छुट्टी दे दी, साथ ही उसके मुंह से एक दीर्घ निःश्वास भी निकल पड़ा।

दासी को बुलाकर कहा, "मेरे माथे पर ज़रा ठंडे पानी की पट्टी रख दे।"

बहुत दिनों तक बन्धन में रहने के बाद एकाएक उससे मुक्ति पाकर यद्यपि ऊर्मि आत्मविस्मृत हो गई थी, अपने को भूल गई थी, फिर भी कभी-कभी अकस्मात् उसे अपने जीवन की कठिन ज़िम्मेदारी याद आ जाती। वह तो स्वाधीन नहीं है, वह तो अपने व्रत के साथ बंधी हुई है। उस व्रत ने उसे जिस एक विशेष व्यक्ति के साथ बांध रखा है, उसीका अनुशासन उसके ऊपर है, उसके दैनिक कर्तव्य के [illegible]-निषेध को उसीने तय कर दिया है। उसके विचार पर सदैव के [illegible] उसीका अधिकार हो चुका है, इस बात को भी ऊर्मि किसी [illegible]र अस्वीकार नहीं कर सकती। जब नीरद उपस्थित था तब स्वीकार करना सरल था, वह मन में बल का अनुभव करती थी। इस समय उसकी इच्छा बिलकुल ही विमुख हो गई है। उधर कर्तव्य-बुद्धि भी चोट करती हैं। कर्तव्य-बुद्धि के अत्याचार से ही मन और खराब हो गया है। अपना अपराध क्षमा करना कठिन हो जाने से ही अपराध को प्रश्रय मिल गया। अपनी वेदना पर अफीम का लेप चढ़ाने, उसे भूलने के लिए ही शशांक के साथ हंसी-खेल और आमोद-प्रमोद में सदा अपने को भुलाए रखने की चेष्टा करती है। कहती है, 'जब समय आएगा तब अपने-आप ही सब ठीक हो जाएगा। अभी जब तक छुट्टी है, उन सब बातों को रहने दो।' फिर किसी-किसी दिन एकाएक अपने मस्तिष्क को झकझोरकर उठ खड़ी होती और कापी-किताब ट्रंक से बाहर निकालकर उसमें मन लगाने की कोशिश करती।

तब फिर शशांक की पारी आ जाती। पुस्तक इत्यादि छीनकर वह बक्स में बन्द कर देता और उसी बक्स पर स्वयं बैठ जाता। ऊर्मि कहती, "शशांक दा, यह बड़ा अन्याय है। मेरा समय नष्ट न कीजिए।'

शशांक कहता, "तुम्हारा समय नष्ट करने में मुझे अपना समय भी तो नष्ट करना पड़ता है; इसलिए हिसाब चुकता हो जाता है।'

इसके बाद थोड़ी देर तक छीन-झपट करके अन्त में ऊर्मि हार मान लेती है। यह हार उसे बिलकुल बुरी भी नहीं लगती। इस तरह की बाधाओं के होते हो कर्तव्य-बुद्धि की पीड़ा पांच-छः दिन तक चलती रहती, फिर उसका ज़ोर कम हो जाता। कहती, "जीजाजी, मुझे दुर्बल न समझिएगा। मैंने मन के भीतर प्रतिज्ञा को दृढ़ कर रखा है।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् यहां की डिग्री लेकर डाक्टरी सीखने यूरोप जाऊंगी।"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद अस्पताल खोलकर उसका भार उठाऊंगी।"

"और किसका भार लोगी ? वह जो नीरद मुकर्जी नाम का एक इनसफरेबल[1]..."

शशांक का मुख हाथ से बन्द करके ऊर्मि कहती, "चुप रहिए। ऐसी बातें करेंगे तो आपसे मेरा सदा के लिए झगड़ा हो जाएगा।"

अपने को खूब कठोर करके ऊर्मि मन में कहती, 'मुझे सच्चा बनना पड़ेगा, सच्चा बनना ही पड़ेगा। नीरद के साथ उसके इस सम्बन्ध को बाबूजी स्वयं स्थिर कर गए हैं। उनके प्रति सच्चा न रहना मेरे लिए असतीत्व है।'

किन्तु मुश्किल यह है कि दूसरी तरफ से उसे कोई शक्ति नहीं प्राप्त होती है। ऊर्मि एक ऐसा पौधा है जिसने मिट्टी को तो पकड़ रखा है, परन्तु आकाश के आलोक से वंचित है; उसके पत्ते पीले पड़

---

1. दम्भी

खेल पूरा हो जाने दो।"

"किन्तु जीजी······"

"अच्छा, जीजी से मैं छुट्टी लिए आता हूं।"

जीजी ने छुट्टी दे दी, साथ ही उसके मुंह से एक दीर्घ निःश्वास भी निकल पड़ा।

दासी को बुलाकर कहा, "मेरे माथे पर जरा ठंडे पानी की पट्टी रख दे।"

वहुत दिनों तक वन्धन में रहने के वाद एकाएक उससे मुक्ति पाकर यद्यपि ऊर्मि आत्मविस्मृत हो गई थी, अपने को भूल गई थी, फिर भी कभी-कभी अकस्मात् उसे अपने जीवन की कठिन ज़िम्मेदारी याद आ जाती। वह तो स्वाधीन नहीं है, वह तो अपने व्रत के साथ वंधी हुई है। उस व्रत ने उसे जिस एक विशेष व्यक्ति के साथ वांध रखा है, उसीका अनुशासन उसके ऊपर है, उसके दैनिक कर्तव्य के -निषेध को उसीने तय कर दिया है। उसके विचार पर सदैव के उसीका अधिकार हो चुका है, इस वात को भी ऊर्मि किसी कार अस्वीकार नहीं कर सकती। जव नीरद उपस्थित था तव स्वीकार करना सरल था, वह मन में वल का अनुभव करती थी। इस समय उसकी इच्छा विलकुल ही विमुख हो गई है। उधर कर्तव्य-वुद्धि भी चोट करती हैं। कर्तव्य-वुद्धि के अत्याचार से ही मन और खराव हो गया है। अपना अपराध क्षमा करना कठिन हो जाने से ही अपराध को प्रश्रय मिल गया। अपनी वेदना पर अफीम का लेप चढ़ाने, उसे भूलने के लिए ही शशांक के साथ हंसी-खेल और आमोद-प्रमोद में सदा अपने को भुलाए रखने की चेष्टा करती है। कहती है, 'जव समय आएगा तव अपने-आप ही सव ठीक हो जाएगा। अभी जव तक छुट्टी है, उन सव वातों को रहने दो।' फिर किसी-किसी दिन एकाएक अपने मस्तिष्क को झकझोरकर उठ खड़ी होती और कापी-किताव ट्रंक से वाहर निकालकर उसमें मन लगाने की कोशिश करती।

तब फिर शशांक की पारी आ जाती। पुस्तक इत्यादि छीनकर वह बक्स में बन्द कर देता और उसी बक्स पर स्वयं बैठ जाता। ऊर्मि कहती, "शशांक दा, यह बड़ा अन्याय है। मेरा समय नष्ट न कीजिए।"

शशांक कहता, "तुम्हारा समय नष्ट करने में मुझे अपना समय भी तो नष्ट करना पड़ता है; इसलिए हिसाब चुकता हो जाता है।"

इसके बाद थोड़ी देर तक छीन-झपट करके अन्त में ऊर्मि हार मान लेती है। यह हार उसे बिलकुल बुरी भी नहीं लगती। इस तरह की बाधाओं के होते ही कर्तव्य-बुद्धि की पीड़ा पांच-छः दिन तक चलती रहती, फिर उसका जोर कम हो जाता। कहती, "जीजाजी, मुझे दुर्बल न समझिएगा। मैंने मन के भीतर प्रतिज्ञा को दृढ़ कर रखा है।"

"अर्थात्?"

"अर्थात् यहां की डिग्री लेकर डाक्टरी सीखने यूरोप जाऊंगी।"

"उसके बाद?"

"उसके बाद अस्पताल खोलकर उसका भार उठाऊंगी।"

"और किसका भार लोगी? वह जो नीरद मुकर्जी नाम का एक इनसफरेबल[1]..."

शशांक का मुख हाथ से बन्द करके ऊर्मि कहती, "चुप रहिए। ऐसी बातें करेंगे तो आपसे मेरा सदा के लिए झगड़ा हो जाएगा।"

अपने को खूब कठोर करके ऊर्मि मन में कहती, 'मुझे सच्चा बनना पड़ेगा, सच्चा बनना ही पड़ेगा। नीरद के साथ उसके इस सम्बन्ध को बाबूजी स्वयं स्थिर कर गए हैं। उसके प्रति सच्चा न रहना मेरे लिए असतीत्व है।'

किन्तु मुश्किल यह है कि दूसरी तरफ से उसे कोई शक्ति नहीं प्राप्त होती है। ऊर्मि एक ऐसा पौधा है जिसने मिट्टी को तो पकड़ रखा है, परन्तु आकाश के आलोक से वंचित है; उसके पत्ते पीले पड़

---

१. दम्भी

गए हैं। किसी-किसी समय अधीर हो उठती है, और मन ही मन सोचती है, 'यह मनुष्य चिट्ठी जैसी एक चिट्ठी भी नहीं लिख पाता!'

ऊर्मि ने बहुत दिनों तक कान्वेण्ट में शिक्षा पाई है। और कुछ हो या न हो, अंग्रेजी उसकी पक्की है; यह बात नीरद को मालूम थी। इसीलिए उसका प्रण था कि वह अंग्रेज़ी लिखकर ऊर्मि को अभिभूत कर लेगा। बंगला में चिट्ठी लिखता तो आफत से बच जाता, किन्तु अपने बारे में बेचारे को मालूम नहीं था कि अंग्रेज़ी में वह कोरा है। भारी-भारी शब्द जुटाकर, पुस्तकों से लम्बे-लम्बे उद्धरण लेकर वहां अपनी भाषा को ऐसा बोझिल बना देता था जैसे बोझ से लदी कोई बैलगाड़ी हो। ऊर्मि को हंसी आती, किन्तु हंसने में उसे लाज लगती और वह अपना तिरस्कार करके कहती, 'बंगाली की अंग्रेज़ी में लगती हो तो उसके लिए दोष देना स्नबिश—हिमाकत—है।'

देश में रहते हुए जब नीरद ने उसे बार-बार सदुपदेश दिए हैं तब उसके रंग-ढंग से गम्भीर हो उठे हैं और उसे उनमें गौरव का अनुभव हुआ है। तब वह जितना कान से सुनती थी उससे ज्यादा वज़न अपने अनुमान से बढ़ा लिया करती थी। किन्तु चिट्ठी में अनुमान-अन्दाज़ के लिए जगह ही नहीं रहती। कमर बांधकर सामने आनेवाली भारी-भारी बातें हल्की हो जाती हैं, कहने को जब कोई बात नहीं रहती तब मोटी-मोटी, भारी-भरकम आवाज़ ही पकड़ ली जाती है।

पास रहने पर नीरद के जिस भाव को उसने सहन कर लिया था वही दूर रहने पर उसे बहुत ज्यादा खटकने लगा। बेचारा हंसना तो बिलकुल जानता ही नहीं। चिट्ठी में यह अभाव सबसे अधिक प्रकट हो जाता है। यह शशांक के साथ नीरद की तुलना की बात उसके मन में अपने-आप उठ खड़ी होती है।

तुलना का एक कारण उस दिन एकाएक सामने आ गया। वह कोई कपड़ा खोज रही थी कि बक्स के नीचेवाले हिस्से में उसे ऊन की बुनी एक अधूरी जुराब मिल गई। चार साल पहले की बात याद आ

गई। तब हेमन्त जीता था। वे सब एकसाथ दार्जिलिंग गए हुए थे। आमोद-प्रमोद की कोई सीमा नहीं थी। हेमन्त और शशांक दोनों ने मिलकर हंसी-मज़ाक का झरना ही प्रवाहित कर दिया था। ऊर्मि ने अपनी एक मौसी से बुनाई का नया-नया काम सीखा था। जन्मदिन पर दादा को भेंट देने के लिए वह एक जोड़ा जुराब बुन रही थी। इस बात पर उसकी हंसी उड़ाते हुए शशांक ने कहा था, 'अपने दादा को और जो कुछ चाहे दो पर जूते (जुराब) न देना। भगवान मनु ने कहा है कि ऐसा करने से गुरुजनों के प्रति असम्मान होता है।' ऊर्मि ने उस समय कटाक्ष करते हुए कहा, 'तब भगवान मनु ने किसके ऊपर उनका प्रयोग करने को कहा था?'

शशांक ने गम्भीर मुंह बनाकर कहा, 'असम्मान का सनातन अधिकार है बहनोई का। बहुत दिनों से हमारा पावना बाकी है। सूद मिलाकर वह और भारी हो गया है।'

'याद तो नहीं पड़ता (कि आपका कोई पावना है)।'

'याद पड़ने की बात ही नहीं है। तब तुम बिलकुल नाबालिग थीं। इसलिए तुम्हारी जीजी के साथ शुभ लग्न में जिस दिन इस सौभाग्यवान का विवाह हुआ उस दिन सुहागरात का कर्णधारत्व तुम धारण नहीं कर सकती थीं। आज उन कोमल करपल्लवों में अरचितकर्णेठी ने ही इन करपल्लवों के रचित जुराब के जोड़े का रूप धारण किया है। इसलिए पहले से ही कहे रखता हूं कि इन्हें पाने का मेरा दावा है।'

वह दावा पूरा नहीं हुआ। वे जुराबें यथासमय प्रणाली के रूप में दादा के चरणों में चढ़ा दी गई थीं। इसके कुछ दिनों बाद शशांक को एक चिट्ठी ऊर्मि को मिली। उसे पाकर वह खूब हंसी थी। वह चिट्ठी आज भी उसके बक्स में रखी है। आज वह फिर उसे खोलकर पढ़ने लगी।

"कल तुम तो चली गईं। तुम्हारी याद अभी पुरानी भी न हो

पाई थी कि तुम्हारे नाम को लेकर एक कलंक लगाया जाने लगा है। उसे तुमसे छिपाऊं तो अकर्तव्य का भागी बनूंगा।

"मेरे पांव में एक जोड़ा ताल-तल्ले की चट्टी बहुतों ने देखी है। पर उससे भी ज़्यादा ध्यान से देखा है उसके छिद्रों को भेदकर मेघ-मुक्त चन्द्रमाला सदृश मेरी चरण-नख पंक्ति को (देखो भारतचन्द्र[1] का 'अन्नदामंगल' उपमा की सच्चाई के बारे में संदेह पैदा हो तो अपनी जीजी से इसकी मीमांसा करा सकती हो)। जिस समय आज सुबह हमारे आफिस के वृन्दावन नन्दी ने आकर सपादुक मेरे चरणों का स्पर्श करके प्रणाम किया तब मेरी पदमर्यादा की जो विदीर्णता प्रकट हुई थी उसके अगौरव से मेरा मन आन्दोलित होने लगा। नौकर से मैंने पूछा, 'महेश, मेरी दूसरी चट्टी की जोड़ी किस अन-धिकारी चरणों में गतिमान हो रही है?' उसने माथा खुजाते हुए कहा, 'उस घर की ऊर्मि मौसी आदि के साथ जब आप दार्जिलिंग थे, तब चट्टियों के दो जोड़े भी आपके साथ गए थे। आप लौटे आपके पास एक जोड़ी चट्टियां लौटीं—दूसरे जोड़े के एक ही पांव की आई दूसरे पांव की···' उसका मुंह लाल हो उठा था। मैंने डांटकर कहा, 'बस, चुप!' उस समय वहां बहुत-से आदमी थे। हरण चट्टी-जूता—नीच काम है। किन्तु आदमी का मन दुर्बल होता है, लोभ प्रबल होता है। ऐसे काम कर बैठता है। जानता हूं, ईश्वर उसे क्षमा कर देंगे। फिर भी अपहरण के काम में बुद्धि का परिचय मिलने पर इस बुरे काम की ग्लानि कुछ कम हो जाती है। किन्तु एक पांव की चट्टी! धिक्!!

"जिसने चोरी का यह काम किया है, उसका नाम जहां तक मुझ से हो सका है, मैंने गुप्त रखा है, पर यदि वह अपनी स्वाभाविक वाचालतावश अनर्थकारी शोरगुल मचाएगी तो बात सब तक फैल

---

१. बंगला के कवि

जाएगी। महेश जैसे निन्दक का मुंह एक जोड़ी शिल्पकार्य-खचित चट्टी की सहायता से बन्द किया जा सकता है। इसीके साथ पैर का नाप भेज रहा हूं।"

चिट्ठी पाकर ऊर्मि मुस्कराती हुई ऊन की जुरावें बुनने बैठी थी किन्तु पूरी न कर पाई। फिर तो ऊन के काम में उसका उत्साह ही न रहा। आज वह जुराव मिल गई तो उसने निश्चय किया कि उस दार्जिलिंग-यात्रा की वर्षगांठ पर यह अधूरी जुराव ही वह शशांक को भेंट करेगी। चन्द हफ्तों के बाद ही वह दिन आनेवाला है। उसके मुंह से एक गहरी सांस निकल गई, 'हाय हास्योज्ज्वल आकाश में हल्के डैनों से उड़ते हुए वे दिन कहां चले गए!' आज तो उसके सामने अवकाशहीन कर्तव्य कठोर मरुभूमि-सी यह जिन्दगी फैली हुई है।

आज फागुन की पूर्णिमा है। होली खेलने का दिन है। शशांक शहर के बाहर किसी काम से गया हुआ था, उसे होली खेलने की फुर्सत नहीं है। इस दिन की बात ही वह भूल गया था। ऊर्मि ने आज रोग-शय्या पर पड़ी अपनी जीजी के चरणों में अबीर लगाकर उसे प्रणाम किया। उसके बाद खोजते-खोजते बाहर की ओर जाकर देखा कि शशांक आफिस वाले कमरे में बैठा एकाग्रचित्त से काम कर रहा है। चुपके-चुपके उसके पीछे आकर उसने उसके मुंह में अच्छी तरह अबीर मल दिया। उसके कागज-पत्र सब रंग उठे। छीन-झप मच गई; डेस्क पर लाल-काली रोशनाई की दवातें थीं। शशांक ने उठाकर ऊर्मि की साड़ी पर उड़ेल दीं और हाथ से पकड़ उसके आंच में से अबीर छीनकर मुंह पर मल दिया। फिर तो भाग-दौड़, ठेलम ठेल, धमाचौकड़ी मच गई। समय बीतता गया; स्नान-ध्यान औ भोजन का समय पीछे छूट गया, ऊर्मि की खिलखिलाहट और स्व रोच्छ्वास से सारा मकान मुखरित हो उठा। अन्त में शशांक बीमार पड़ जाने की आशंका से दूत पर दूत भेजकर शर्मिला ने कि प्रकार उन्हें निवृत्त किया।

दिन ढल गया; रात हो गई। पुष्पित कदम्ब की चोटी के ऊपर खुले आकाश में पूर्णिमा का चांद उठने लगा। एकाएक फागुन की मदमाती वायु का एक झोंका आया। बाग के सब पेड़-पौधे झूम उठे, जमीन पर पड़ती उनकी छायाएं भी इस कार्य में शामिल हो गईं। खिड़की के पास ऊर्मि चुपचाप बैठी है। उसे किसी प्रकार नींद नहीं आ रही है। छाती में रक्त का स्पन्दन शान्त नहीं हुआ है। आम के बौर की गन्ध से मन भर उठा है। वसन्त में माधवीलता की मज्जा-मज्जा में फूलों के रूप में फूट पड़ने की जो वेदना होती है वही वेदना ऊर्मि की समस्त देह को भीतर मथ रही है। निकट के स्नानागार में जाकर उसने अपना सिर धो लिया, भीगे तौलिये से सारा शरीर पोंछ डाला। फिर बिछौने पर पड़ी करवटें बदलती रही; कुछ देर बाद सपना देखती हुई सो गई।

रात तीन बजे उसकी नींद टूट गई। चांद तब खिड़की के सामने था। कमरे में अंधेरा है, बाहर सुपारी के वृक्षों की गली में प्रकाश छाया की आंखमिचौनी है। ऊर्मि की छाती फटने लगी, रुलाई उमड़ आई; किसी तरह रोके नहीं रुकती। पेट के बल औंधी पड़कर तकिये से मुंह छिपा रोने लगी। यह प्राणों का रोदन है, भाषा में इसके लिए शब्द नहीं हैं, अर्थ नहीं हैं। प्रश्न करने पर भी क्या वह बता सकती है कि किस जगह से यह वेदना का ज्वार उसकी देह और मन में उफन उठा है जो अपने दिन के समस्त कार्यों और रात की सुख-भरी नींद को बहाए लिए जा रहा है।

सुबह जब ऊर्मि की नींद टूटी तब कमरे में धूप आ गई थी। सुबह के काम-काज के समय वह अनुपस्थित रही। थकावट के कारण सो गई होगी, यह विचारकर शर्मिला ने क्षमा कर दिया। पर न जाने किस अनुपात से ऊर्मि आज उदास है, न जाने क्यों उसके मन में यह बात उठती है कि वह हारती जा रही है। जाकर जीजी से बोली, "जीजी, मैं तुम्हारा कोई काम तो कर नहीं पाती हूं, कहो तो घर

लौट जाऊं।"

बात टालकर नहीं कह सके कि अभी मत जा। बोले, "अच्छा, तू जा। तेरी पढ़ाई-लिखाई का नुकसान होता होगा। बीच-बीच में जब समय मिले, देख जाया करना।"

उस समय शशांक काम से बाहर गया हुआ था। उसी बीच उसी दिन ऊर्मि अपने घर चली गई।

शशांक उस दिन ऊर्मि को देने के लिए यांत्रिक चित्र बनाने का एक सैट खरीदकर घर लौटा। विचार था कि उसे यह विद्या भी सिखाएगा। लौटने पर जब उसे न देखा तब शर्मिला के कमरे में आकर पूछा, "ऊर्मि कहां गई ?"

शर्मिला ने कहा, "यहां उसके पढ़ने-लिखने में असुविधा होती है, यह कहकर वह अपने घर चली गई।"

"कुछ दिन असुविधा होगी" यह जानकर ही तो वह यहां आई थी। असुविधा की बात एकाएक आज ही कैसे उठ पड़ी हुई ?"

बात के लहजे से शर्मिला समझ गई कि शशांक को उसीपर सन्देह है, पर उस बारे में व्यर्थ कोई तर्क न करके कहा, "मेरा नाम लेकर तुम उसे बुला लाओ, वह कोई आपत्ति न करेगी।"

ऊर्मि ने घर लौटकर देखा कि बहुत दिनों बाद विलायत से उसके नाम नीरद की एक चिट्ठी आई पड़ी है। भय के मारे खोल नहीं रही है। मन में समझ रही है कि उसकी ओर काफी अपराध एकत्र हो गए हैं। इससे पहले वह नियम-भंग की कैफियत के रूप में जीजी की बीमारी का उल्लेख कर चुकी है। कुछ दिन से वह कैफियत भी झूठी होती जा रही है। शशांक ने जिद करके शर्मिला की सेवा में दिन और रात के लिए अलग-अलग एक-एक नर्स रख दी है। डाक्टर की हिदायत के अनुसार रोगी के कमरे में हर समय आत्मीय जनों का आना जाना वे रोक देती हैं। ऊर्मि मन में समझती है कि [illegible] जीजी की बीमारी की कैफियत को भी अधिक महत्त्व नहीं [illegible]

बेकार की बात है। सचमुच उसमें कोई काम की बात नहीं है। वहां मेरी ज़रूरत नहीं है। उसने पश्चात्ताप-दग्ध हृदय से तय किया कि इस बार अपराध स्वीकार करके वह क्षमा मांगेगी। कहेगी, 'अब कभी गलती न होगी, किसी तरह मैं नियम का भंग नहीं करूंगी।'

चिट्ठी खोलने से पहले, बहुत दिनों बाद आज उसने नीरद का फोटोग्राफ बाहर निकाला और उसे टेबल के ऊपर रख दिया। जानती है कि इस तस्वीर को देखकर शशांक उसका खूब मज़ाक उड़ाएगा। किन्तु ऊर्मि शशांक के उस मज़ाक से किसी प्रकार कुंठित नहीं होगी; यही उसका प्रायश्चित होगा। नीरद के साथ उसका विवाह होगा, इस प्रसंग को जीजी के घर वह दबा देती थी; दूसरे भी यह बात न छेड़ते थे क्योंकि वहां सभीके लिए यह अप्रिय प्रसंग था। आज मुट्ठी बांधकर ऊर्मि ने निश्चय किया कि वह अपने समस्त व्यवहार [illegible]ज़ोर के साथ इस बात की घोषणा करेगी। कुछ दिनों से उसने [illegible]ी 'एंगेजमेंट' की अंगूठी छिपा रखी रखी थी। उसे बाहर निकालकर पहन लिया। अंगूठी बहुत ही कम दाम की थी। नीरद ने अपनी ईमानदारी से पूर्ण गरीबी के गर्व से ही इतनी सस्ती अंगूठी दी थी, इसलिए उसका महत्त्व हीरे की अंगूठी से भी अधिक था। उसे देते समय उसके मन में यह भाव था कि अंगूठी के मूल्य से मेरा मूल्य नहीं, मेरे मूल्य से अंगूठी का मूल्य है।'

यथासाध्य अपना शोधन करने के बाद ऊर्मि ने बड़े धीरे-धीरे लिफाफा खोला।

चिट्ठी पढ़कर वह एकाएक उछल पड़ी। उसके मन में तो आया कि नाचे, पर नाचने का अभ्यास उसे था नहीं। बिछौनें पर सितार पड़ा हुआ था। उसे उठाकर, बिना सुर बांधे ही, झनझन झनकार करती बजाने लगी।

ठीक इसी समय शशांक ने घर में प्रवेश करके पूछा, "क्या बात है? क्या ब्याह का दिन स्थिर हो गया है?"

"हां, शशांक दा, स्थिर हो गया है।"

"कोई उलट-फेर नहीं होगा ?"

"नहीं, कुछ नहीं।"

"तब, अभी शहनाईवालों को बयाना दे देना चाहिए, और मीन-नाग का सन्देश ?"

"तुम्हें कोई यत्न नहीं करना पड़ेगा।"

'स्वयं ही सब कुछ कर लोगी ? धन्य वीरांगना ! वहू को आशीर्वाद कौन देगा।"

"उस आशीर्वाद के रुपये मेरी निज की जेब से ही निकलेंगे।"

"मछली के तेल में ही मछली पकेगी ? यह बात ठीक समझ में नहीं आई।"

"यह लो, अब समझ जाओ।" कहकर ऊर्मि ने चिट्ठी उसके हाथ में दे दी।

पढ़कर शशांक अट्टहास कर उठा।

लिखा है, "जिस रिसर्च में मैं अपने को समर्पित करना चाहता हूं, भारतवर्ष में वह सम्भव नहीं है। इसलिए मुझे अपने जीवन का एक और बड़ा त्याग करना पड़ रहा है। ऊर्मि के साथ विवाह-सम्बन्ध भंग किए बिना दूसरा उपाय नहीं है। एक यूरोपीय महिला के साथ विवाह करके हमारे कार्य में आत्मदान करने की बात है। काम तो वही है, फिर चाहे भारतवर्ष में हो या यूरोप में। [illegible] बाबू जिस काम के लिए धन देना चाहते थे उसका [illegible] किया जाए तो अन्याय न होगा। मृत व्यक्ति के [illegible] करना ही होगा।"

शशांक ने कहा, "इस जीवित व्यक्ति का [illegible] तुम उसे यूरोप में ही अधिक [illegible] होगा। भय है कि रुपया बन्द [illegible] तो यहां दौड़ा चला आएगा।"

ऊर्मि ने हंसकर कहा, "यदि आपके मन में ऐसा भय हो तो आप ो रुपये दे दें, मैं तो एक पैसा भी नहीं दूंगी।"

शशांक बोला, "फिर तो मन वदल नहीं जाएगा ? मानिनी का अभिमान अटल तो रहेगा ?"

"वदल भी जाए तो उससे आपका क्या वनता-विगड़ता है ?"

"सवाल का सच्चा उत्तर देने पर अहंकार वढ़ जाएगा, इसलिए तुम्हारे हित के लिए चुप ही रहता हूं। किन्तु सोचता हूं, इस आदमी के जवड़े तो साधारण नहीं जान पड़ते।"

ऊर्मि के मन से एक वड़ा भार, वहुत दिनों से चला आ रहा भार, उतर गया। मुक्ति के आनन्द में वह क्या करे, कुछ समझ नहीं पा रही है। उसने नीरद की लिखी हुई कर्तव्य-सूची फाड़ फेंकी। गली में एक भिक्षुक खड़ा भिक्षा मांग रहा था, अंगूठी उंगली से निकालकर खिड़की में से उसकी ओर फेंक दी।

पूछने लगी, "यह जो मोटी-मोटी कितावें हैं, जिनमें पेंसिल से ...त्त्वपूर्ण अंशों पर निशान लगे हुए हैं, इन्हें कोई 'हॉकर' खरीद ... है ?"

"ज़रा सुनूं तो कि अगर न ख़रीदे तो फिर क्या होगा ?"

"इनमें कहीं पुराने ज़माने का भूत अपना घर न वना ले और वीच-वीच में आधी रात को तर्जनी उंगली दिखाता मेरे विछौने के पास आकर खड़ा न हो जाया करे।"

"अगर ऐसा डर है तो मैं हॉकर की वाट न देखकर स्वयं ही इन्हें खरीद लूंगा।"

"खरीदकर आप क्या करेंगे ?"

"हिन्दू-शास्त्र के मत से अन्त्येष्टि-क्रिया। और यदि तुम्हारे मन को उससे शांति मिले तो गया जाने को भी राज़ी हूं।"

"नहीं, इतनी ज्यादती शोभा नहीं देगी।"

"तब अपनी लाइब्रेरी के कोने में पिरामिड[1] बनाके उसमें इन्हें 'ममी'[2] करके रख दूंगा।"

"किन्तु आज अपने काम पर नहीं आ सकेंगे।"

"सारे दिन?"

"हां, सारे दिन।"

"क्या करना होगा?"

"मोटर करके कहीं चल देना होगा।"

"अपनी जीजी से छुट्टी तो ले आओ।"

"नहीं, लौटकर जीजी से कहूंगी और उनकी फटकार सुनूंगी। यह फटकार अच्छी लगेगी।"

"अच्छा मैं भी तुम्हारी जीजी की फटकार हजम करने को तैयार हूं। यदि टायर फट जाए तो भी मन में दुःख न करूंगा। पैंतालीस मील प्रति घण्टे की गति से दो-चार आदमियों को दबाकर जेलखाने तक पहुंचने में भी मुझे कोई आपत्ति नहीं, किन्तु तीन बार वचन दो कि मोटर की यह रथयात्रा पूरी होने के बाद तुम मेरे मकान पर वापस चलोगी।"

"चलूंगी, चलूंगी, चलूंगी।"

मोटर-यात्रा पूरी करके दोनों भवानीपुर के मकान पर पहुंचे, किन्तु घण्टे में पैंतालीस मील का वेग अभी तक खून में रुक नहीं पा रहा है। संसार के समस्त अधिकार, लज्जा और भय इस वेग में विलुप्त हो गए हैं।

कई दिनों तक शशांक का सब काम ठप रहा। मन के भीतर ही भीतर वह समझता है कि यह अच्छा नहीं हो रहा है। काम को बहुत बड़ी क्षति भी पहुंच सकती है। रात को बिछौने पर पड़ा-पड़ा

---

१. मिस्र के उच्च समाधि-स्तंभ। २. शव जो विशेष मसालों से सुरक्षित उन समाधि-स्तंभों के अन्दर रखे हुए हैं।

दु:संभावनाओं को वढ़ा-चढ़ाकर देखा करता है, किन्तु दूसरे दिन फि
स्वाधिकार-प्रमत्त 'मेघदूत'[1] के यक्ष की भांति हो जाता है। एक वा
मदिरा पी लेने पर उसके पश्चात्ताप को ढकने के लिए पुनः पीन
पड़ती है।

शशांक

कुछ दिन इसी प्रकार वीते। आंखों में नशा छा गया, मन पंकिल हो उठा।

अपने को स्पष्ट समझने में ऊर्मि को देर लगी, किन्तु एक दिन एकाएक चौंक पड़ी और समझ गई।

न जाने क्यों मथुरा दादा से ऊर्मि वहुत डरती है और यथासंभव उनसे आंख वचाती रहती है। उस दिन मथुरा वावू सुवह जीजी के घर आ गए और दोपहर तक रहे।

उनके जाने के वाद जीजी ने ऊर्मि को वुला भेजा। उसका मुंह कठोर किन्तु शान्त था। वोली, "प्रतिदिन उनके काम में विघ्न डालकर तूने क्या किया है, जानती है?"

ऊर्मि सहम गई। वोली, "क्या हुआ, जीजी?"

जीजी ने कहा, "मथुरा दादा वता गए हैं कि कुछ दिनों से तुम्हारे जीजा ने अपना काम-काज देखना विल्कुल छोड़ दिया है; जवाहरलाल पर सव भार डाल दिया है और वह दोनों हाथों से मालमता लूट रहा है। वड़े-वड़े गोदामों की छत एकदम चलनी हो गई है। उस दिन की वर्षा में जव माल नष्ट हो गया तव मालूम हुआ। हमारी कम्पनी का वड़ा काम है, इसलिए जांच किए विना ही लोग उसपर विश्वास कर लेते हैं। अव उसकी वड़ी वदनामी हो रही है; गहरा नुकसान

---

१. कालिदास का काव्य जो विरही यक्ष के संदेश से भरा है।

· है। मथुरा दादा अलग हो जाएंगे।"

ऊर्मि की छाती धक्-धक् कर उठी, मुंह राख जैसा सफेद हो गया। एक क्षण में विद्युत्-प्रकाश की तरह अपने मन का प्रच्छन्न रहस्य उसके सामने प्रकाशित हो उठा। स्पष्ट समझ गई कि किसी अज्ञात क्षण में उसका मन भीतर ही भीतर उन्मत्त हो उठा था—भले-बुरे का कोई विचार नहीं रह गया। उस समय शशांक का काम ही उसका प्रतिद्वन्द्वी हो गया और उसीके साथ उसकी लड़ाई ठन गई। शशांक को काम से हटाकर सदा अपने पास ही रखने के लिए वह तड़पती रहती थी। कितने ही दिन ऐसी बात हुई है कि शशांक स्नान करने गया है, ऐसे समय लोग काम की बातचीत करने आए हैं, परन्तु बिना विचार किए ही ऊर्मि ने नौकर को आदेश दिया है, 'कह दो कि इस समय भेंट नहीं हो सकती।'

उसे भय होता कि स्नान करके आते ही शशांक कहीं काम पर न चला जाए। वहां जाकर अगर काम में फंस गया तो मेरा दिन व्यर्थ चला जाएगा। अपने भयानक नशे का सांघातिक चित्र उसकी आंखों के आगे नाच उठा। वह उसी क्षण पछाड़ खाकर जीजी के चरणों पर गिर पड़ी और रुंधे गले से बार-बार कहने लगी, "मार कर निकाल दो अपने घर से मुझे! इसी समय निकाल दो, जीजी!"

आज जीजी निश्चित रूप में निश्चय कर बैठी थी कि वह किसी तरह से ऊर्मि को क्षमा न करेगी, पर मन पिघल गया।

धीरे-धीरे ऊर्मि के सिर पर हाथ फेरते-फेरते उसने कहा, 'कोई चिन्ता न कर; जो कुछ हुआ है उसका उपाय किया जाएगा।"

ऊर्मि उठ बैठी। बोली, "जीजी! तुम्हीं क्यों नुकसान भरोगी? मेरे पास भी तो रुपया है।"

शर्मिला बोली, "पागल हो गई है क्या? समझती है, मेरे पास कुछ नहीं है? मथुरा दादा से कह दिया है कि इन [illegible] लेकर वे गोलमाल न करें। जो नुकसान हुआ है वह मैं [illegible]

मसे कहती हूं कि तुम्हारे जीजा को न मालूम होने पाए कि मुझे ये
तें ज्ञात हो गई हैं।"

"माफ करो, जीजी, मुझे माफ करो !…" कहकर ऊर्मि पुनः
ीजी के पांव पकड़कर अपना सिर पीटने लगी।

शर्मिला ने आंखों से आंसू पोंछते हुए थके स्वर में कहा, "कौन
माफ करेगा, वहन ! संसार वड़ा जटिल है। जो सोचती हूं, नहीं
होता, जिसके लिए प्राण तक अर्पण करना चाहती हूं, वह भी गड़-
वड़ हो जाता है।"

अव ऊर्मि अपनी जीजी को एक क्षण के लिए छोड़ना नहीं
चाहती। दवादारू देना, नहलाना, खिलाना, सुलाना, सव परिचर्या
अपने हाथ से करती है। अव फिर से पुस्तकें भी पढ़ने लगी है और
वह भी जीजी की खाट के पास वैठकर। अव वह अपने ऊपर विल-
कुल विश्वास नहीं करती, शशांक पर भी नहीं।

फल यह हुआ कि शशांक वार-वार रोगिणी के कमरे में आने
लगा। पुरुष अपनी अंधता के कारण ही समझ नहीं पाता कि उसकी
छटपटाहट स्त्री की आंखों में पड़ रही है और ऊर्मि लज्जा से मरी जाती
है। शशांक ने आकर मोहनवागान का फुटवाल मैच दिखाने का प्रलोभन
दिया, वह व्यर्थ हुआ। समाचारपत्र में पेंसिल से निशान लगाकर चार्ली
चैंपलिन के सिनेमा खेल की ओर इशारा, किया उसका भी कुछ फल
न निकला। जव ऊर्मि दुर्लभ नहीं थी तव सम्पूर्ण वाधाओं के होते हुए
भी शशांक अपने काम-काज की ओर कुछ न कुछ ध्यान देता था, परन्तु
अव ऐसा करना उसके लिए विलकुल असम्भव हो गया।

वेचारे के इस निरर्थक निपीड़न से शुरू-शुरू में शर्मिला अपने
गहरे दुःख के अन्दर से भी सुख पाती थी। किन्तु क्रमशः देख लिया
कि स्वामी की यंत्रणा प्रवल हो उठी है, मुंह सूख गया है, आंखों के
नीचे काली रेखा पड़ गई है। खाने के समय ऊर्मि पास नहीं वैठती
इसलिए शशांक का खाने-पीने का उत्साह और परिमाण दोनों घटता

जा रहा है, यह उसे देखते ही समझ में आ जाता है। इस घर में आनन्द की जो बाढ़ आ गई थी, वह पूर्णतः समाप्त हो गई, बल्कि इस बाढ़ के पहले जिस सहज ढंग पर जीवन बीतता था वह भी नहीं रह गया।

कोई समय था कि शशांक अपने चेहरे की चर्चा में बिलकुल उदासीन रहता था। नाई से बाल कटवाने में प्रायः मुण्डा हो जाता था, केश-रंजन की आवश्यकता ही न रह जाती थी। शर्मिला इसपर बहुत कुछ कहती परन्तु अन्त में कुछ परिणाम न निकलने से निराश रह जाती। किन्तु इधर जब से ऊर्मि आई, तब से दिखाई पड़ा कि ऊंची हंसी के साथ की गई संक्षिप्त आपत्ति भी निष्फल नहीं गई। नये संस्करण के केशोद्‌गम के साथ सिर में सुगन्धित तेल डालने की घटना पहली बार हुई। किन्तु इधर फिर वही पुरानी बात होने लगी। केशोन्नति-विधि के प्रति उसका यह अनादर ही उसकी अन्तर्वेदना को प्रकट कर देता है। यह इतनी बढ़ गई है कि उसके बारे में प्रकट या अप्रकट कोई सीधी हंसी करना संभव नहीं रह गया है। शर्मिला की उत्कण्ठा से उसका क्षोभ दूर हो गया है। अब स्वामी के प्रति करुणा और अपने प्रति धिक्कार का भाव उठकर उसकी छाती को चीर रहा है। इससे बीमारी की पीड़ा भी बढ़ती जा रही है।

किले के मैदान में फौज की लड़ाई का खेल होगा। शशांक डरते-डरते पूछने आया, "ऊर्मि, देखने चलोगी? बैठने के लिए अच्छी जगह ठीक कर रखी है।"

ऊर्मि के कुछ उत्तर देने से पहले ही शर्मिला ने कहा, "जाएगी क्यों नहीं? जरूर जाएगी। जरा बाहर घूम आने के लिए तो वह छटपटा रही है।"

इस प्रकार का सहारा पाकर दो दिन भी नहीं बीते थे कि पूछने आया, "सर्कस?"

इस प्रस्ताव से ऊर्मि उत्साहित होती दिखाई पड़ी।

उसके वाद फिर, "वोटैनिकल गार्डन ?"

पर इसमें एक वाधा आ गई। जीजी को वहुत देर तक अकेले छोड़ने को ऊर्मि तैयार नहीं हुई।

तव उसकी जीजी ने स्वयं शशांक का पक्ष लिया, "देश के राज-मजूरों के साथ भरी दोपहरी में घूम-घूमकर काम देखते-देखते जो आदमी हैरान हो गया हो, धूल-धक्कड़ में जिसका सारा दिन वीता हो, वह अगर ज़रा हवा न खाए तो उसका शरीर टूट जाएगा न !"

इसी एक युक्ति के सहारे स्टीमर पर राजगंज तक घूम आना असंगत नहीं जान पड़ा।

शर्मिला मन ही मन कहती है, 'जिसके लिए काम-काज खो देने की चिन्ता उन्हें नहीं है, स्वयं उसका खो जाना वे कैसे सह पाएंगे ?'

शशांक से किसीने स्पष्ट कुछ नहीं कहा पर चारों ओर से एक अव्यक्त समर्थन उसे मिल रहा था। शशांक ने समझ रखा है कि शर्मिला के मन में कोई विशेष व्यथा नहीं है। उन दोनों को एकत्रित करके उन्हें खुश देखने में ही उसकी खुशी है। साधारण स्त्री के लिए ऐसा करना सम्भव नहीं हो सकता, किन्तु शर्मिला तो असाधारण है। जव शशांक नौकरी करता था तव उसने किसी चित्रकार से शर्मिला का एक रंगीन चित्र वनवाया था। इतने दिनों से वह 'पोर्टफोलियो' में ही पड़ा था। उसे निकालकर विलायती दुकान से मूल्यवान फैशन का फ्रेम लगवा लाया और आफिस में जहां वैठता था उसके ठीक सामने लगवा दिया। उसके सामने के फूलदान में माली रोज़ फूल लगा जाता है।

एक दिन शशांक वाग में फूले सूर्यमुखी को देखते-देखते ऊर्मि का हाथ दवाकर वोला, "तुम अच्छी तरह जानती हो कि मैं तुम्हें प्यार करता हूं; और तुम्हारी जीजी—वे तो देवी हैं। उनपर मेरी जितनी भक्ति है उतनी जीवन में दूसरे किसीके प्रति नहीं है। वे संसार का प्राणी नहीं हैं। वे हमसे वहुत ऊपर हैं।"

जीजी ने बार-बार कहकर ऊर्मि को यह बात स्पष्ट समझा दी है, "मुझे बड़ी तसल्ली है कि मेरे न रहने पर भी तुम तो इस घर में रहोगी।" इस घर में और किसी स्त्री के आविर्भाव की कल्पना करना भी शर्मिला के लिए व्ययाजनक है, किन्तु शशांक की सेवा-जतन करने वाली कोई स्त्री न रहेगी, ऐसी दुरवस्था को भी वह मन ही मन नहीं सह सकती। व्यवसाय की बात भी जीजी ने उसे समझाकर कहा है, "अगर उनके प्यार में बाधा पड़ी तो उनका काम-काज सब नष्ट हो जाएगा। उनका मन अगर तृप्त रहा तभी उनके काम-काज में एक व्यवस्था आ पाएगी।"

शशांक का मन उन्मत्त हो उठा है। वह एक ऐसे चन्द्रलोक में है जहां संसार की सब जिम्मेदारियां सुख की नींद में डूब गई हैं। आजकल रविवार की छुट्टी बिताने में उसकी निष्ठा ईसाइयों की निष्ठा के समान दृढ़ हो गई। एक दिन आकर शर्मिला से कहा, "देखो, जूट मिल के साहबों से उनका स्टीमलाँच मिल गया है। आज रविवार की छुट्टी है, सोचता हूं, ऊर्मि को लेकर डायमण्ड हार्बर तक हो आऊं, संध्या के पहले ही लौट आऊंगा।"

शर्मिला की छाती की शिराएं झन्ना उठीं, वेदना से माथे की चमड़ी सिकुड़ गई, पर शशांक की आंखों को यह सब नहीं दिखाई पड़ा। शर्मिला ने केवल एक बार पूछा, "खाने-पीने का क्या होगा?"

शशांक बोला, "होटल में सब प्रबन्ध हो गया है।"

जिस जमाने में इन सारी बातों का निश्चय करने का भार शर्मिला पर था, उस जमाने में शशांक इनके प्रति उदासीन रहता था। आज सब उलट-पलट गया है।

ज्योंही शर्मिला ने कहा, 'अच्छा, चले जाना,' त्योंही एक क्षण भी न ठहरकर शशांक बाहर दौड़ गया। शर्मिला की इच्छा हुई कि फूट-फूट कर रोए। तकिये से मुंह छिपाकर बार-बार कहने लगी, "अब जीने में क्या धरा है।"

कल रविवार को उनके विवाह की वर्षगांठ है। आज तक इस अनुष्ठान में कभी गड़बड़ी न हुई। इस बार भी स्वामी से कुछ कहे बिना बिछौने पर पड़े-पड़े सब तैयारियां की हैं। शशांक ने ब्याह के दिन जो लाल बनारसी 'जोड़ा'[1] पहना था वही इस दिन पहनता है; इसी प्रकार शर्मिला अपने ब्याह के दिनवाली 'चेली'[2] पहन लेती है। फिर स्वामी के गले में माला पहनाकर उन्हें भोजन के लिए सामने बैठाती है, धूपबत्ती जला देती है। बगल के कमरे में ग्रामोफोन पर शहनाई बजती रहती है। पिछले सालों में शशांक बिना बताए अपने पसन्द की कोई न कोई चीज खरीद लाकर उसे भेंट में देता रहा है। शर्मिला ने समझा था कि वे इस बार भी जरूर कोई चीज देंगे; कल तो मालूम हो ही जाएगा।

आज वह अब कुछ और सहन करने में असमर्थ है। इस समय अब घर में कोई नहीं है, तब बार-बार उसके मुंह से शब्द निकलते , 'झूठा, झूठा, झूठा ! इस खेल से क्या लाभ !'

रात नींद नहीं आई। सुबह ही सुनाई पड़ा कि मोटर दरवाजे के पास से निकल गई। शर्मिला सिसकते हुए रो पड़ी और बोली, "भगवान, तुम झूठे हो !"

अब रोग तेजी से बढ़ने लगा। जिस दिन लक्षण बहुत बुरे दिखाई देने लगे उस दिन शर्मिला ने स्वामी को बुलाया। सांझ का समय है, कमरे में बड़ी हल्की रोशनी रह गई है। नर्स को संकेत से हट जाने को कहा। स्वामी को पास बिठाया और उनका हाथ पकड़कर बोली, "भगवान से अपने जीवन में जो वरदान मैंने पाया था वह

---

१. वर द्वारा विवाह के समय पहना जानेवाला कुसुम्बी रेशमी दुपट्टा-धोती २. कन्या द्वारा विवाह के समय पहनी जानेवाली कुसुम्बी रेशमी साड़ी।

तुम हो। उसके लायक शक्ति उन्होंने मुझे नहीं दी। जितना हो सका, मैंने किया। गलतियां बहुत हुई हैं, उनके लिए मुझे माफ कर दो।"

शशांक कुछ बोलना चाहता था, पर उसे रोककर कहा, "नहीं, तुम कुछ न बोलो। ऊर्मि को तुम्हारे हाथ दिए जा रही हूं। वह मेरी अपनी बहिन है। उसमें तुम मुझे ही पाओगे, मुझसे तुम्हें जो कुछ नहीं मिला वह भी पाओगे।...नहीं, चुप रहो, कुछ मत बोलो। इस मरणकाल में ही मेरा सौभाग्य पूरा हुआ कि मैं तुम्हें सुखी देख सकी।"

नर्स ने बाहर से ही कहा, "डाक्टर साहब आए हैं।"

शर्मिला ने कहा, "भेज दो।"

और बातचीत बन्द हो गई।

शर्मिला के मामा अनेक प्रकार की अशास्त्रीय चिकित्सा का पता लगाने में बड़ा उत्साह रखते थे। इस समय वे एक सन्यासी की सेवा में लगे हुए हैं। जब डाक्टरों ने जवाब दे दिया कि उनके पास अब कुछ करने को नहीं रहा तब उन्होंने हठ किया कि हिमालय से लौटे इन बाबाजी की दवा की परीक्षा एक बार करनी ही होगी। किसी तिब्बती जड़ी का चूर्ण और उसके साथ अधिक मात्रा में दूध का सेवन करना होगा।

शशांक किसी प्रकार के अनाड़ी को सहन करने में असमर्थ था। उसने एतराज़ किया। शर्मिला ने कहा, "और कोई फल तो नहीं निकलेगा, परन्तु मामा को सान्त्वना तो मिल ही जाएगी।"

परन्तु देखते-देखते फल निकलने लगा। सांस का कष्ट कम हो गया, रक्तचाप की तकलीफ दूर हो गई।

सात दिन बीते, पंद्रह दिन बीते, शर्मिला उठकर बैठ गई। डाक्टर ने कहा, "मृत्यु के आघात से अपनी रक्षा के लिए कभी-कभी शरीर सन्नद्ध हो जाता है और अन्तिम आघात से अपने को बचा लेता है।"

शर्मिला बच गई।

तब वह सोचने लगी, 'यह कैसी विपत्ति है ! अब क्या करूं ? अन्त में मेरा जी उठना ही क्या मरने से अधिक दुःखदायी हो उठेगा ?' उधर ऊर्मि अपनी चीज-वस्तु यहां से जाने के लिए समेट रही है। यहां उसकी पाली समाप्त हो गई।

जीजी ने आकर कहा, "तू न जा सकेगी।"

"ऐसी क्या बात है ?"

"हिन्दू समाज में क्या किसी स्त्री ने बहिन सौत का घर नहीं संभाला है !"

"छिः !"

"लोकनिन्दा ! लोगों के मुंह की बात ईश्वरीय विधान से भी बढ़ जाएगी ?"

उसने शशांक को बुलाकर कहा, "चलो, हम सब नेपाल चलें। वहां, राज-दरबार में तुम्हें काम मिलने की भी बात हुई थी; प्रयत्न से वह मिल जाएगा। वहां, निन्दा की कोई बात भी न उठेगी।"

शर्मिला ने किसीको दुविधा में रहने का अवसर नहीं दिया।

जाने की तैयारी होने लगी। परन्तु ऊर्मि अब भी उदास है और छिपी-छिपी रहती है।

शशांक ने उससे कहा, "आज अगर तुम मुझे छोड़ जाती हो तो सोच लो मेरी क्या दशा होगी।"

ऊर्मि बोली, "मैं कुछ सोचने में असमर्थ हूं। आप दोनों जो तय करेंगे वही होगा।"

तैयारी में कुछ समय लगा। उसके बाद जाने का समय जब निकट आ पहुंचा तब ऊर्मि ने कहा, "सात-आठ दिन और रुक जाओ। मैं काकाजी से काम-काज की व्यवस्था के सम्बन्ध में बात-चीत तो कर आऊं।"

ऊर्मि चली गई।

शर्मिला वच गई।

तव वह सोचने लगी, 'यह कैसी विपत्ति है ! अव क्या करूं ? अन्त में मेरा जी उठना ही क्या मरने से अधिक दुःखदायी हो उठेगा ?' उधर ऊर्मि अपनी चीज़-वस्तु यहां से जाने के लिए समेट रही है। यहां उसकी पाली समाप्त हो गई।

जीजी ने आकर कहा, "तू न जा सकेगी।"

"ऐसी क्या वात है ?"

"हिन्दू समाज में क्या किसी स्त्री ने वहिन सौत का घर नहीं संभाला है !"

"छिः !"

"लोकनिन्दा ! लोगों के मुंह की वात ईश्वरीय विधान से भी वढ़ जाएगी ?"

उसने शशांक को बुलाकर कहा, "चलो, हम सव नेपाल चलें। ...ां राज-दरवार में तुम्हें काम मिलने की भी वात हुई थी; प्रयत्न से वह मिल जाएगा। वहां, निन्दा की कोई वात भी न उठेगी।"

शर्मिला ने किसीको दुविधा में रहने का अवसर नहीं दिया।

जाने की तैयारी होने लगी। परन्तु ऊर्मि अव भी उदास है और छिपी-छिपी रहती है।

शशांक ने उससे कहा, "आज अगर तुम मुझे छोड़ जाती हो तो सोच लो मेरी क्या दशा होगी।"

ऊर्मि वोली, "मैं कुछ सोचने में असमर्थ हूं। आप दोनों जो तय करेंगे वही होगा।"

तैयारी में कुछ समय लगा। उसके वाद जाने का समय जव निकट आ पहुंचा तव ऊर्मि ने कहा, "सात-आठ दिन और रुक जाओ। मैं काकाजी से काम-काज की व्यवस्था के सम्वन्ध में वात-चीत तो कर आऊं।"

ऊर्मि चली गई।

इसी समय मथुरा बाबू गंभीर मुंह बनाए शर्मिला के पास आए। बोले, "तुम लोग ठीक समय पर ही आ रहे हो। तुम्हारे साथ बातचीत तय हो जाने के बाद ही मैंने शशांक का हिसाब-किताब अलग कर दिया था, अपने साथ उसके नफा-नुकसान का सिल-सिला ही नहीं रखा। इधर काम बन्द करने की दृष्टि से शशांक कई दिनों से अपना हिसाब-किताब समझ रहा था। मालूम हुआ कि तुम्हारे रुपये बिलकुल डूब चुके हैं। इतने पर भी जो देना है उसे देखते हुए जान पड़ता है कि मकान बेचना पड़ेगा।"

शर्मिला ने पूछा, "सर्वनाश यहां तक आ पहुंचा और उन्हें मालूम ही न हुआ ?"

मथुरा काका बोले, "सर्वनाश चीज ही ऐसी है जो बिजली की तरह एकाएक गिरती है, जिस क्षण मारती है उसके पहले जरा भी मालूम नहीं होने देती। वे समझते थे कि उनका नुकसान हो रहा है। उस समय थोड़े प्रयत्न से स्थिति संभल सकती थी। किन्तु दुर्बुद्धि उत्पन्न हुई। व्यवसाय में हुई गलती को झटपट सुधार लेने की जल्दबाजी में, हम सबसे छिपाकर, पत्थर के कोयले के बाजार में तेजी-मन्दी का सट्टा करने लगे। चढ़े बाजार में जो खरीदा था, उसे मन्दी के बाजार में बेच देना पड़ा। एकाएक आज दिखाई पड़ा कि सब कुछ आतिशबाजी की भांति जल चुका है, केवल राख रह गई है। अब तो भगवान की कृपा से नेपाल का काम मिल जाए तभी निस्तार है।"

शर्मिला गरीबी से नहीं डरती, बल्कि वह जानती है कि अभाव के, गरीबी के जमाने में स्वामी की दुनिया में उसका स्थान और सुदृढ़ हो जाएगा। उसे विश्वास है कि दारिद्र्य की कठोरता को यथासंभव मृदु करके वह अपने दिन बिता सकती है। जो कुछ गहने उसके हाथ में बच रहे हैं, उनके सहारे अभी कुछ दिन बिना विशेष कष्ट के बीत जाएंगे। उसके मन में संकोच के साथ एक बात उठती है कि ऊर्मि

के साथ ब्याह हो जाने पर उसकी सम्पत्ति भी तो स्वामी की हो जाएगी। किन्तु केवल जीवनयात्रा ही तो यथेष्ट नहीं है। इतने दिनों अपनी शक्ति से अपने ही हाथ से स्वामी जो सम्पत्ति अर्जित करते आ रहे थे और जिसके लिए शर्मिला अपने हृदय के अनेक प्रबल दावों को स्वेच्छा से दबाती-रोकती आ रही है, वही उन दोनों के सम्मिलित जीवन की मूर्तिमती आशा आज मृग-मरीचिका की भांति मिट गई और उनके गौरव को मिट्टी में मिला दिया। वह मन ही मन कहने लगी, 'यदि तभी मर गई होती तो इस अधिकार से बचाव हो गया होता। मेरे भाग्य में जो लिखा था वह तो हो गया किन्तु गरीबी के अपमान की यह दारुण शून्यता एक दिन उनके मन को न जाने किस पश्चात्ताप से झकझोर देगी! एक दिन ऐसा आ सकता है कि जिसके मोह में चूर होकर यह सब किया है, उसे उनका मन क्षमा न कर सके [illegible]र उसका दिया अन्न उसे विषतुल्य लगने लगे। अपनी उन्मत्तता [illegible] देखकर लज्जित होंगे, परन्तु दोष देंगे मदिरा को। और [illegible] अन्त में ऊर्मि की सम्पत्ति पर निर्भर रहना ही आवश्यक हो गया हो तो उस आत्मापमान के क्षोभ में ऊर्मि को क्षण-क्षण जल-जलकर मरना पड़ेगा।'

उधर एक दिन सब हिसाब-किताब देखने के लिए जब शशांक मथुरा बाबू के पास गया, तब उसे अकस्मात् मालूम पड़ा कि व्यवसाय में शर्मिला के सारे रुपये डूब चुके हैं। शर्मिला ने इतने दिनों तक यह बात उसे नहीं बताई और स्वयं ही मथुरा बाबू के साथ हिसाब-किताब साफ कर दिया।

शशांक के मन में सब बातें याद आने लगीं, 'नौकरी छोड़ने पर उसने एक दिन शर्मिला से ही रुपये उधार लेकर यह व्यवसाय शुरू किया था और आज भी व्यवसाय का अन्त हो जाने पर शर्मिला का ऋण सिर पर लादे हुए वह नौकरी करने जा रहा है। अब यह ऋण तो वह चुका न पाएगा। नौकरी में मिलनेवाले वेतन से उसके चुकाने

बात सुन रखो। जिस प्रकार एक दिन तुमने मुझपर विश्वास किया था, उसी प्रकार आज फिर मुझपर विश्वास करो।"

शर्मिला ने स्वामी की छाती पर सिर रखकर कहा, "तुम भी मुझपर विश्वास करना। मुझे अपना काम-काज समझाते रहना, आज से मुझे ऐसी शिक्षा दो कि मैं तुम्हारे काम के योग्य बन सकूं।"

बाहर से आवाज आई, "चिट्ठी है।"

ऊर्मि के हाथ की लिखी दो चिट्ठियां हैं। एक शशांक के नाम है:

"मैं अभी बम्बई के रास्ते में हूं; विलायत जा रही हूं। बाबूजी के आदेश के अनुसार डाक्टरी सीखकर ही लौटूंगी। छः-सात साल लग जाएंगे इसमें। तुम्हारी गृहस्थी में पहुंचकर मैं जो तोड़-फोड़ कर आई हूं, वह इस बीच काल के हाथ से अपने-आप जुड़कर ठीक हो जाएगी। मेरे लिए चिन्ता न करना; तुम्हारी ही चिन्ता रह गई है मन में।"

शर्मिला की चिट्ठी में लिखा था:

"जीजी! तुम्हारे चरणों में शत-सहस्र प्रणाम। अज्ञान में अपराध किए हैं, माफ कर देना। यदि तुम्हारी दृष्टि में वे अपराध न हों तो इतना जानकर ही मैं सुखी हो जाऊंगी। इससे अधिक सुख की आशा मन में नहीं रखूंगी। किसमें सुख है, इसे ही मैं निश्चित रूप से कब जानती हूं? और सुख यदि नहीं है तो न सही। भूल करने से डरती हूं।"

रासमणि का वेटा

रासमणि थीं तो कालीचरण की मा, किन्तु विशेष स्थिति आ
के कारण उन्हें पिता बनना पड़ा। मा-बाप दोनों ही जहां मां
जाते हैं वहां लड़के की भलाई की आशा कम ही रह जाती है।
समणि के पति भवानीचरण अपने बेटे पर किसी तरह की कड़ाई
ही कर पाते थे।

बात यह है कि भवानीचरण शानबाड़ी के प्रतिष्ठित धनाढ्य कु.
में पैदा हुए हैं। उनके पिता अभयाचरण ने दो विवाह किए थे। पहली
स्त्री से एक पुत्र श्यामाचरण हुआ। ज्यादा उम्र में, पहली स्त्री के
मरने पर जब उन्होंने दूसरा विवाह किया तब उनके ससुर ने आलन्दी
तालुका अपनी लड़की के नाम लिखा लिया क्योंकि जमाई की ज्यादा
उम्र का हिसाब लगाकर उन्होंने सोच लिया था कि यदि लड़की
विधवा भी हो गई तो उसे भोजन-वस्त्र के लिए सौतेले लड़के का मु
तो नहीं देखना पड़ेगा।

लड़की के पिता की कल्पना शीघ्र ही सार्थक भी हो गई। ना
भवानीचरण के जन्म के कुछ दिनों बाद ही जमाई अभयाचरण
देहान्त हो गया। उनकी कन्या आलन्दी तालुका की मालकि
गई।

तब श्यामाचरण प्रौढ़ हो चुके थे। उनका बड़ा लड़का
चरण से साल-भर बड़ा था। श्यामाचरण अपने बच्चों के

वात सुन रखो। जिस प्रकार एक दिन तुमने मुझपर विश्वास किया था, उसी प्रकार आज फिर मुझपर विश्वास करो।"

शर्मिला ने स्वामी की छाती पर सिर रखकर कहा, "तुम भी मुझपर विश्वास करना। मुझे अपना काम-काज समझाते रहना, आज से मुझे ऐसी शिक्षा दो कि मैं तुम्हारे काम के योग्य बन सकूं।"

वाहर से आवाज आई, "चिट्ठी है।"

ऊर्मि के हाथ की लिखी दो चिट्ठियां हैं। एक शशांक के नाम है:

"मैं अभी वम्बई के रास्ते में हूं; विलायत जा रही हूं। वावूजी के आदेश के अनुसार डाक्टरी सीखकर ही लौटूंगी। छः-सात साल लग जाएंगे इसमें। तुम्हारी गृहस्थी में पहुंचकर मैं जो तोड़-फोड़ कर आई हूं, वह इस वीच काल के हाथ से अपने-आप जुड़कर ठीक हो जाएगी। मेरे लिए चिन्ता न करना; तुम्हारी ही चिन्ता रह गई है मन में।"

शर्मिला की चिट्ठी में लिखा था:

"जीजी! तुम्हारे चरणों में शत-सहस्र प्रणाम। अज्ञान में अपराध किए हैं, माफ कर देना। यदि तुम्हारी दृष्टि में वे अपराध न हों तो इतना जानकर ही मैं सुखी हो जाऊंगी। इससे अधिक सुख की आशा मन में नहीं रखूंगी। किसमें सुख है, इसे ही मैं निश्चित रूप से क्या जानती हूं? और सुख यदि नहीं है तो न सही। भूल करने से डरती हूं।"

रासमणि का वेटा

रासमणि थीं तो कालीचरण की मां, किन्तु विशेष स्थिति आ
के कारण उन्हें पिता बनना पड़ा। मां-बाप दोनों ही जहां मां
जाते हैं वहां लड़के की भलाई की आशा कम ही रह जाती है।
समणि के पति भवानीचरण अपने वेटे पर किसी तरह की कड़ाई
ही कर पाते थे।

बात यह है कि भवानीचरण ज्ञानबाडी के प्रतिष्ठित धनाढ्य कुल
में पैदा हुए हैं। उनके पिता अभयाचरण ने दो विवाह किए थे। पहली
स्त्री से एक पुत्र श्यामाचरण हुआ। ज्यादा उम्र में, पहली स्त्री के
मरने पर जब उन्होंने दूसरा विवाह किया तब उनके ससुर ने आलन्दी
तालुका अपनी लड़की के नाम लिखा लिया क्योंकि जमाई की ज्यादा
उम्र का हिसाब लगाकर उन्होंने सोच लिया था कि यदि लड़की
विधवा भी हो गई तो उसे भोजन-वस्त्र के लिए सौतेले लड़के का मुंह
तो नहीं देखना पड़ेगा।

लड़की के पिता की कल्पना शीघ्र ही सार्थक भी हो गई। नाती
भवानीचरण के जन्म के कुछ दिनों बाद ही जमाई अभयाचरण
देहान्त हो गया। उनकी कन्या आलन्दी तालुका की मालकिन
गई।

तब श्यामाचरण प्रौढ़ हो चुके थे। उनका बड़ा लड़का भ
चरण से साल-भर बड़ा था। श्यामाचरण अपने बच्चों के स

भवानी का भी पालन करने लगे। भवानी की मां की सम्पत्ति को उन्होंने कभी हाथ न लगाया और हर साल साफ हिसाब देकर वे उनसे रसीद लेते रहे। जो देखता, वही उनकी ईमानदारी पर मुग्ध हो जाता।

वैसे इतनी ईमानदारी को बेवकूफी कहनेवालों का भी अभाव नहीं था। गांववालों को यह अच्छा नहीं लगता था कि अखण्ड पैतृक सम्पत्ति का एक हिस्सा दूसरी स्त्री के हाथ में चला जाए। अगर श्यामाचरण किसी चालाकी से दस्तावेज़ खत्म कर देते तो लोगवाग उनकी चतुराई की तारीफ ही करते, किन्तु श्यामाचरण ने अपने पारिवारिक अधिकारों को खंडित करके भी विमाता की जायदाद को सुरक्षित रखा।

कुछ इस ईमानदारी के कारण और कुछ अपनी स्वाभाविक स्नेहशीलता के कारण विमाता व्रजसुन्दरी भी श्यामाचरण को अपने पुत्र की तरह ही मानती थीं और उनपर विश्वास रखती थीं। श्यामाचरण, जो उनकी सम्पत्ति को स्वतन्त्र मानकर चलते थे, उसपर कभी-कभी वे झुंझलाकर कह उठती थीं, "बेटा, सम्पत्ति मैं अपने साथ तो ले नहीं जाऊंगी, तुम्हीं लोगों की है, तुम्हीं लोगों की रहेगी। इस तरह मुझे हिसाब-किताब क्यों दिखाया करते हो?" किन्तु श्यामाचरण कभी इन बातों से विचलित नहीं हुए।

श्यामाचरण अपने लड़के पर कड़ा शासन रखते थे, किन्तु भवानीचरण पर किसी तरह की कड़ाई नहीं करते थे। सब लोग यही कहते हैं कि वे भवानी को अपने लड़के से ज्यादा चाहते हैं। पर इस लाड़-प्यार का फल यह हुआ कि भवानीचरण की पढ़ाई-लिखाई कुछ नहीं हुई। जायदाद की देख-भाल के विषय में वे सदा बालक रहे और अपने दादा (बड़े भाई) पर ही निर्भर करते रहे। कभी-कभी कागज़ों पर उन्हें दस्तखत-भर करने पड़ते थे। क्यों दस्तखत कर रहे हैं, यह जानने की उन्होंने कभी कोशिश नहीं की; और करते भी तो उसमें

पाना उनके वश की बात नही थी।

र श्यामाचरण का बडा लड़का तारापद, पिता के काम में
ाथ बंटाने के कारण, धीरे-धीरे सब काम-काज सीख गया। जब
ाचरण की मृत्यु हुई तो एक दिन तारापद ने भवानीचरण से कह
, "काका, अब हमारा एकसाथ रहना संभव न होगा। न जाने
कोई झगड़ा-टंटा खड़ा हो जाए और घर बर्बाद होने का कुयोग
जाए, इसलिए अलग रहना ही ठीक है।"

भवानीचरण ने तो कभी स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी कि
अलग होकर अपनी जमीन-जायदाद की देख-रेख मुझे स्वयं करनी
पड़ेगी। बचपन से इसी घर मे वे सबके साथ पलकर बड़े हुए है इस-
लिए स्वभावत: उसे अखण्ड समझते आए। इसलिए यह नई बात
जानकर कि उसमे कही जोड है, जहां से उसके दो टुकडे किए जा
सकते हैं, व्याकुल हो गए।

किन्तु जब वंश की बेइज्जती के भय एवं स्वजनो की मनोवेदना
से तारापद अपने निश्चय से नहीं डिगा तब विवश होकर भवानीचरण
को भी जायदाद के बंटवारे की चिन्ता करनी पडी। तारापद को
उनकी चिन्ता पर आश्चर्य हुआ। उसने कहा, "काका, चिन्ता क्यों
करते हैं? बंटवारा तो हो ही चुका। बाबा अपने जीवनकाल में
बंटवारा तय करके सब तय कर गए हैं।"

भवानीचरण हतबुद्धि होकर बोले, "ऐसा है क्या? मुझे
ुछ मालूम ही नही।"

तारापद ने कहा, "आश्चर्य है कि आपको कुछ नही मा
सारी दुनिया जानती है कि आलन्दी तालुका आप लोगो को देक
पहले से ही व्यवस्था कर गए हैं कि बाद मे कोई बखेडा न
सब से बराबर यही बात चली आ रही है।"

भवानीचरण ने सोचा, 'सब कुछ संभव है।' फिर पूछ

तारापद बोला, "आप चाहें तो यह मकान ले सकते हैं। हम लोगों को शहर की कोठी मिल जाएगी तो उसीमें किसी तरह काम चला लेंगे।"

तारापद इतनी सरलता से अपना पैतृक गृह छोड़ने को तैयार है, यह देख उसकी उदारता पर भवानीचरण को बड़ा आश्चर्य हुआ। शहर की कोठी उन्होंने न कभी देखी थी, न उससे उनका कोई अनुराग ही था।

पर जब भवानीचरण ने अपनी मां व्रजसुन्दरी से सब बातें बताईं तो उन्होंने सिर पीटकर कहा, "यह कैसी बात है? आलन्दी ताल्लुका तो मेरे लिए खास तौर से अलग कर दिया गया था। उससे तुम लोगों का क्या सम्बन्ध? उसकी तो आय भी अधिक नहीं है। पैतृक सम्पत्ति में तुम्हारा जो भाग है वह क्यों न मिलेगा?"

भवानीचरण बोले, "तारापद का कहना है कि बाबूजी उसके सिवा हमें कुछ नहीं दे गए हैं।"

व्रजसुन्दरी ने कहा, "वाह! तुम्हारे बाबूजी वसीयतनामे की दो नकल छोड़ गए हैं, उनमें से एक मेरे ट्रंक में है।"

ट्रंक खोला गया। उसमें आलन्दी ताल्लुके के दानपत्र के सिवा कोई वसीयतनामा नहीं निकला। ज्ञात होता है, किसीने गायब कर दिया।

सलाह के लिए लोगों को बुलाया गया। गांव के पुरोहितों का लड़का बगलाचरण आया। लोगों का कथन है कि चतुराई में कोई उससे टक्कर नहीं ले सकता। उसके बाप हैं गांव के मंत्रदाता, बेटा हो गया है मंत्रणादाता। बाप-बेटे ने मिलकर गांव के परलोक और लोक का काम बांट लिया है।

बगलाचरण ने कहा, "वसीयत न मिलने से क्या होता है? पैतृक सम्पत्ति में दोनों भाइयों का बराबर-बराबर हिस्सा है ही। इसमें सन्देह की क्या बात है?"

अन्त में भवानीचरण ने मुकदमे के समुद्र में अपनी नाव छोड़ दी।

मंगलाचरण खेवैया हुए। जब नाव बन्दरगाह पर लगी और लोहे के सन्दूक की परीक्षा की गई तो देखा गया कि लक्ष्मी अपने वाहनसमेत वहां से उड़ गई है, केवल सोने के दो-एक पंख टूटे पड़े हैं। पैतृक सम्पत्ति तारापद के हाथ चली गई। आलन्दी ताल्लुके का जो हिस्सा मुकदमे के खर्च में डूबने से बचा उसमें किसी तरह गुजर चल सकती है पर प्रतिष्ठित कुल की प्रतिष्ठा की रक्षा नहीं की जा सकती। खैर, पुराना मकान मिल गया, उसे ही भवानीचरण ने अपनी बड़ी भारी विजय समझा। तारापद सपरिवार शहर की कोठी में चला गया। इस प्रकार दोनों परिवारों का सम्बन्ध बिलकुल समाप्त हो गया।

श्यामाचरण का यह विश्वासघात ब्रजसुन्दरी को शूल की तरह चुभ गया। पिता का वसीयतनामा गायब करके श्यामाचरण ने भाई और पिता दोनों के साथ जो धोखेबाजी की उसे वे किसी तरह भूल नहीं सकीं और तब तक जीती रहीं, यही कहती रहीं, "भगवान देखेंगे।" वे भवानीचरण को भी सांत्वना देती रहीं, "मैं कानून-अदालत नहीं जानती, पर देखना उनका वसीयतनामा एक न एक दिन तुम्हें मिलकर रहेगा।"

मां के मुंह से बार-बार सुनकर भवानीचरण भी विश्वास करने लगे कि वसीयतनामा कभी न कभी मिलेगा ही। अपनी विवशता के कारण इस तरह का भरोसा उनके लिए बड़ी बात थी। वे पूरी तरह विश्वास करके बैठ गए कि सती-साध्वी की बात किसी न किसी दिन पूरी होगी और उनकी चीज उन्हें मिलेगी। मां की मृत्यु के बाद तो उनका यह विश्वास और पक्का हो गया क्योंकि मृत्यु ने मां के पुण्य-तेज को उनके सामने और प्रखर कर दिया। अपनी गरीबी की कठिनाइयों की उन्हें कोई परवाह न रही। उनका विश्वास था, यह सब दो दिन का खेल है और समय आने पर सब कुछ ठीक हो जाएगा। पुरानी धारी ढाके की बढ़िया धोतियां जब फट गईं और खरीदकर सस्ती मोटी धोतियां पहननी पड़ीं तो हंसकर रह गए। पूजा में भी

पुराने ज़माने की धूमधाम न की जा सकी; केवल परम्परा का किसी प्रकार पालन हो गया। अतिथि-अभ्यागतों ने गहरी सांस ले-लेकर पुरानी बातें छेड़ीं और भवानीचरण मन ही मन हंसकर रह गए। सोचा, 'बेचारे नहीं जानते कि यह बाधा क्षणिक है, बाद में तो ऐसे समारोहपूर्वक पूजा होगी कि लोग चकित रह जाएंगे।'

उनकी बातें सुननेवालों में मुख्य था नटवर, जो उनका नौकर था। दोनों हर साल बैठकर योजना बनाया करते कि अच्छे दिनों में पूजा का महोत्सव किस तरह मनाया जाएगा। यहां तक कि निमंत्रण किन्हें भेजे जाएंगे और कलकत्ता से नाटक-मण्डली बुलाई जाए या नहीं, इन बातों को लेकर बहस भी छिड़ जाती। नटवर भावी कार्यक्रम के विषय में कंजूसी दिखाता जिसके कारण मालिक की फटकार सुननी पड़ती।

आशय यह है कि अपनी सम्पत्ति के बारे में उन्हें कोई दुश्चिंता नहीं थी, उन्हें चिंता सिर्फ यह थी कि आखिर इस सम्पत्ति को भोगेगा कौन। अब तक उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई थी। विवाह योग्य लड़कियों के पिता जब उनके हितैषी बनकर उन्हें सलाह देते कि दूसरा ब्याह कर लो तो उनका मन भी चंचल हो उठता, किन्तु कुछ दिनों बाद ही पुत्र का जन्म हुआ। सब कहने लगे, "अब इस घर का भाग चमकेगा। अभयाचरण ने इस लड़के के रूप में स्वयं जन्म लिया है। वही आंखें, वह दृष्टि है।" लड़के की जन्मपत्री से भी पुष्टि हो गई कि ग्रहों का योग ऐसा है कि खोई सम्पत्ति अवश्य लौटेगी।

पुत्र-जन्म के बाद से भवानीचरण का स्वभाव भी कुछ-कुछ बदलने लगा। गरीबी को वे माया के खेल समझ अब तक सहन करते आए थे, किन्तु उस भाव की रक्षा बच्चे के सम्बन्ध में करते नहीं बनी। आज तक इस परिवार में निरन्तर जन्म से ही सन्तति को जो सम्मान प्राप्त होता आया है उससे उनका एकमात्र पुत्र वंचित हो रहा है, इस वेदना को वे भूल न पाते थे। आत्मग्लानि से कहते, "मैंने ही

उसे धोखा दिया।" इसलिए इस वेदना को अत्यधिक लाड़-प्यार से ढकने की सदा कोशिश करने लगे।

किन्तु भवानीचरण की पत्नी रासमणि दूसरे ही कैंड की थी। उनके मन में चौधरी-वंश के गौरव की दुश्चिन्ता तो थी नहीं। भवानीचरण सोचते थे, 'बिचारी मामूली घर में जन्मी, इसलिए यह सब क्या समझे ? क्षम्य है, चौधरी-वंश की मान-मर्यादा की धारणा करना उसकी शक्ति के बाहर की चीज है।'

रासमणि स्वयं भी स्वीकार करती थी, "मैं गरीब घर की लड़की हूं, मान-मर्यादा से मुझे क्या लेना-देना है ? मेरे लिए तो बस यह कालीचरण है, यही बना रहे।" खोए वसीयतनामे के फिर से प्राप्त होने और कालीचरण द्वारा लुप्त वंश-गौरव के उद्धार की बातों पर वे कोई ध्यान न देती थी। उधर पति का यह हाल था कि सारे गांव में किसीको न छोड़ा जिससे खोए वसीयतनामे की बात न की हो। हां, अपनी स्त्री से अवश्य बात नहीं हुई। दो-एक बार कोशिश करके देखा भी, पर कोई बढ़ावा न मिलने से मन मसोसकर रह गए। बीती हुई महिमा और आनेवाले ऐश्वर्य दोनों ओर से रासमणि उदास थीं क्योंकि सामने की जरूरतों और चिन्ताओं के कारण उन्हें और कुछ सोचने-समझने की फुर्सत ही न मिलती थी।

उपस्थित आवश्यकताएं कम न थी, बड़ी मुश्किल से किसी तरह गृहस्थी चल रही थी। लक्ष्मी स्वयं तो बड़ी सरलता से चली जाती है पर पीछे इतना बोझ छोड़ जाती है कि वाहकों से ढोते नहीं बनता। साधन तो रहता नहीं पर असाधन बहुत बच जाता है। इस परिवार का आश्रय तो टूट चुका है पर आश्रितगण तब भी उसे छोड़ना नहीं चाहते। भवानीचरण भी ऐसे नहीं हैं कि गरीबी और तंगी के कारण किसीसे चले जाने को कह दें।

बोझ से दबी-पिसी ऐसी टूटी-फूटी गृहस्थी को चलाने का सारा भार बेचारी रासमणि पर है। किसीसे भी उन्हें कोई विशेष सहायता

नहीं मिलती। इस घर में जब अच्छे दिन थे तब सभी आश्रित आराम और आलस्य में दिन बिताते थे। इसलिए जब आज उनसे किसी प्रकार का काम करने को कहा जाता है, तो उसमें वे अपना भारी अपमान अनुभव करते हैं। रसोईघर के धुएं से उनका सिर दुखने लगता है और चलने-फिरने का कोई काम आते ही गठिया का वह दर्द शुरू हो जाता है कि आयुर्वेद का अच्छे से अच्छा तेल भी बेकार साबित होता है। फिर भवानीचरण का यह भी कहना है कि आश्रय के बदले यदि आश्रितों से सेवा ही कराई गई तो वह नौकरी से भी बुरी हुई। उससे तो आश्रयदाता का महत्त्व ही नष्ट हो गया। चौधरी-वंश में कभी ऐसा नहीं हुआ।

इसलिए रासमणि पर ही सब कुछ करने-धरने की ज़िम्मेदारी आ पड़ी है। दिन-रात के कठोर परिश्रम और न जाने किन-किन उपायों से वे घर की सारी आवश्यकताओं को पूरा किया करती हैं और इस तरह जिस प्राणी को दिन-रात गरीबी से लड़ते हुए बड़ी ...तानी से अपना और दूसरों का निर्वाह करना पड़ता है, उसकी कमनीयता जाती रहती है और वह स्वभावतः कठोर हो जाता है। मज़ा तो यह है कि जिनके लिए उन्हें इतना सब करना-सहना पड़ता है उन्हें ही उनकी ये बातें सह्य नहीं। केवल भोजन बनाकर ही रासमणि को फुर्सत नहीं मिल जाती, उन्हें नमक से लेकर घी तक छोटी-बड़ी सब चीज़ें भी स्वयं ही जुटानी पड़ती हैं। आश्चर्य तो यह है कि उस अन्न से तृप्त होकर जो रोज़ दोपहर को खर्राटे लिया करते हैं वे भी अन्न और अन्नदाता दोनों की निन्दा करने से बाज़ नहीं आते।

फिर रासमणि को केवल घर का ही काम-काज नहीं संभालना पड़ता, लेन-देन और बची-खुची जायदाद की देखभाल तथा हिसाब-किताब-सम्बन्धी सब काम करने में और भी कठिनाई है, क्योंकि भवानीचरण का रुपया प्रकृति में अभिमन्यु से उल्टा है। अभिमन्यु

केवल पैठना जानता था, वह केवल निकलना जानता है, लौटना नहीं। रुपयों के लिए कभी किसीसे तकाजा करना भवानीचरण के स्वभाव में नहीं है। रासमणि इस मामले में ठीक उनकी उल्टी हैं। वे खरी हैं, किसीसे एक धेले की रियायत नहीं करतीं। किसान आपस में उनकी निन्दा किया करते और गुमाश्ते उनके गरीब पितृवंश का ओछापन बताकर आलोचना। यहां तक कि कभी-कभी पति तक इस तरह की कंजूसी और कड़ाई को अपने प्रसिद्ध वंश के लिए मान-हानि कहकर नाराज होते। किन्तु निन्दा और अप्रसन्नता की पूर्णतः उपेक्षा करके रासमणि अपना काम नियम से करती ही जाती थीं। अपना दोष स्वीकार कर कहतीं, "मैं गरीब घर की लड़की, अमीरी रंग-ढंग क्या जानूं!" इस प्रकार घर-बाहर सर्वत्र सबको अप्रिय होकर, आंचल कमर से लपेटे आंधी की तरह सब काम-काज करती रहतीं।

पति को किसी काम के लिए बुलाकर कहना तो वे जानती ही नहीं, उलटे उन्हें डर लगा रहता था कि कहीं वे अपने ढंग पर कोई काम करने के लिए मेरे काम में हस्तक्षेप न कर बैठें। सभी बातों में पति के कुछ कहने पर उत्तर देतीं, "तुम चिन्ता न करो, मैं सब कर लूंगी।" और इस तरह उन्हें निरुद्यमी बनाए रखतीं। पति बचपन से हाथ-पांव न हिलाने और सोच-फिकर न करने के आदी थे, इसलिए रासमणि को इस विषय में ज्यादा रगड़-झगड़ न करनी पड़ती थी। बहुत उम्र तक संतान न होने के कारण अपने अकर्मण्य और सरल-प्रकृति पति से ही उनके दाम्पत्य-प्रेम एवं मातृस्नेह दोनों की प्यास मिट जाया करती थी, मानो भवानीचरण एक बड़ी उम्र के बच्चे हों। सास की मृत्यु के बाद से वे ही घर की मालकिन एवं गृहिणी दोनों बन गई थीं। गुरुपुत्र तथा अन्य विपदाओं से पति-रक्षा के कार्य में इतनी कठोरता से काम लेती थीं कि पति के संगी-साथी भी उनसे डरते रहते थे।

आज तक भवानीचरण स्त्री के कहने पर ही चलते रहे, किन्तु

अव पुत्र कालीचरण के विषय में पत्नी का कहना मानना उनके लिए कठिन हो गया। रासमणि पुत्र को भवानीचरण की दृष्टि से नहीं देख पाती थीं। पति के विषय में वे मन में सोचती थीं कि उनका कसूर क्या है, वे क्या करें, उन्होंने बड़े घर में जन्म लिया है इसलिए उनका वैसा सोचना-करना ठीक ही है। इसीलिए वे न चाहती हैं, न आशा करती हैं कि उनके पति किसी तरह का कष्ट उठाएं। कितनी ही तकलीफ और अभाव हो, वे प्राणपण से पति की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयत्न करतीं। उनके घर में बाहरी लोगों के लिए स्थानाभाव हो परन्तु भवानीचरण के आहार-व्यवहार-सम्बन्धी परम्परागत नियमों में जरा भी व्यतिक्रम न होने पाता था। कभी बहुत ज्यादा कष्ट और अभाव होने पर किसी चीज की कमी होती तो भी वे पति पर उसे प्रकट न होने देती थीं। जरूरत होती तो यह कहकर बात छिपा लेतीं, "इस दुष्ट कुत्ते के मारे तो नाक में दम है, सब कुछ भ्रष्ट . दिया!" उल्टे अपनी कल्पित असावधानी के लिए अपने को कारने लगतीं। यदि धोती की जरूरत होती और धोती खरीदने का जुगाड़ न हो पाता तो नटुआ नौकर के ऊपर झुंझलाती हुई कहतीं, "अभी कल ही धोती मंगाई है, आज इस गधे ने न जाने कहां खो दी।" फिर तो भवानीचरण अपने प्रिय सेवक का पक्ष लेकर उसे पत्नी की डांट-फटकार से बचाने को उद्यत हो जाते। कभी-कभी तो यह भी हुआ है कि जो धोती न खरीदी गई, न भवानीचरण ने कभी उसे देखा और जिसको खोने के लिए नटवर अपराधी है, उसके बारे में भवानीचरण कबूल कर लेते, "नटवर का कसूर नहीं, उसने तो धोती मुझे चुनकर दी थी, पर मैंने कहां रख दी या मुझसे फिर क्या हुआ याद नहीं आता।" रासमणि उनकी बात को पूरा करते हुए कहतीं, "तब जरूर तुम बाहर की बैठक में छोड़ आए होगे। वहां सभी तरह के लोग आते-जाते हैं, किसीने हथिया ली होगी।"

भवानीचरण के लिए तो इतनी चिन्ता-व्यवस्था थी, पर पुत्र को

वे पति के समक्ष नहीं रख पातीं। सोचतीं, 'वह तो मेरे ही पेट की संतान है, उसके लिए अमीरी रहन-सहन कैसा ? उसे तो दृढ़ और समर्थ होना चाहिए जिससे सरलतापूर्वक कष्टों का सामना कर सके और मेहनत-मजदूरी करके भी पेट भर सके। उसके लिए 'यह भी' और 'वह भी' वाली व्यवस्था नहीं चाहिए।' इसलिए कालीचरण के लिए खान-पान और वस्त्र की सामान्य व्यवस्था थी। उसे मिलता नाश्ते के लिए गुड़-चूड़ा तथा सर्दी से बचने के लिए दुलाई जिससे सिर-कान भी ढकने की सुविधा रहती। स्कूल के पण्डितजी को बुलाकर रासमणि ने कह दिया, "देखिए पण्डितजी ! लड़के की पढ़ाई में जरा भी ढील-ढाल न कीजिएगा, अपनी देख-रेख में पढ़ाई रखिए जिससे कुछ पढ़-लिख जाए।"

यहीं कठिनाई आ पड़ी और दोनों टकरा गए। सीधे-सादे भवानीचरण में भी विद्रोह के लक्षण दिखाई देने लगे। रासमणि इन लक्षणों पर ध्यान नहीं देतीं। भवानीचरण प्रबल पक्ष से सदा हारते आए हैं; इस बार भी हार मानकर बैठे रहे, पर मन में विरोध को हटा नहीं सके। चौधरी-वंश का लड़का धोती ओढ़े और चूड़ा-गुड़ का जलपान करे ऐसी अनहोनी बात कब तक नहीं देखी जा सकती है।

उन्हें पुराने दिन याद आते हैं। जब बाप-दादों का जमाना था तब दुर्गापूजा के दिनों में उन्हें कितने अच्छे-अच्छे कपड़े मिलते थे और उन्हें पहनकर वे कैसे उत्साह से समारोह में शामिल हुआ करते थे। और आज राममणि बेचारे कालीचरण के लिए ऐसे कपड़े मंगाती है जिन्हें हमारे नौकर-चाकर भी पहनने में आपत्ति करते थे। उनकी वेदना दूर करने के लिए राममणि ने कई बार उन्हें समझाया है, "कालीचरण को जो कुछ दिया जाता है उसीमें वह खुश रहता है। उसे क्या मालूम कि पुराने जमाने में क्या होता-रहता ... लिए तुम व्यर्थ ही दुखी होते हो।" पर उन्हें कि ...

होता। वे भूल न पाते थे कि वेचारे कालीचरण को अपने वंश-गौरव के प्रति अजान रखकर उसे ठगा जा रहा है। उन्हें सबसे अधिक वेदना तब होती जब कालीचरण कोई मामूली उपहार पाने पर दौड़-कर उनके पास खुशी से नाचता दिखाने के लिए आता था। ऐसा दृश्य उनसे देखा नहीं जाता था। और ऐसे समय अक्सर वे मुंह फिरा लेते या वहां से उठ जाते थे।

जब से भवानीचरणवाला मुकदमा चला तब से उनका गुरुगृह काफी सम्पन्न दिखाई पड़ने लगा है। इससे भी सन्तुष्ट न हो बगला-चरण पूजा के अवसर पर कलकत्ता से तरह-तरह के चमक-दमकवाले विलायती खिलौने लाकर दुकान लगा लिया करता है। इन चीज़ों को देखकर गांव के बच्चों एवं नर-नारियों के चित्त चलायमान हो उठते हैं और जब वे सुनते हैं कि कलकत्ता के बाबुओं में इनका प्रचार बढ़ रहा है तो गांववाले भी अपनी ग्रामीणता दूर करने के लिए शक्ति से अधिक खर्च कर इन्हें खरीदने का यत्न करते हैं।

एक बार बगलाचरण एक आश्चर्यकारी मेम-गुड़िया ले आया। उसमें जब चाबी भर दी जाती तो मेम कुर्सी से उठकर पंखा झलने लगती। जब कालीचरण ने इस मेम-गुड़िया को देखा तो उसे पाने के लिए व्याकुल हो उठा। मां से तो उसे कोई आशा थी नहीं इसलिए वह मां से कुछ न कहकर भवानीचरण के पास गया और उनसे गुड़िया ले देने को कहा। भवानीचरण ने उसे तुरन्त आश्वासन दिया कि गुड़िया ले देंगे परन्तु जब उन्हें उसके दाम का पता लगा तो उनका मुंह सूख गया।

रुपये-पैसे की वसूली और रोकड़-नकदी सब रासमणि के हाथ में है। भवानीचरण भिखारी की तरह अपनी अन्नपूर्णा के द्वार पर जा पहुंचे। कुछ देर इधर-उधर की बात करके अपने मन की बात कही। रासमणि से संक्षिप्त उत्तर मिला, "तुम्हारा सिर फिर गया है क्या?"

भवानीचरण कुछ देर चुप सोचते रहे, फिर एकाएक बोले, "देखो,

तो शायद वगलाचरण मान जाता, पर वह जानता है कि इसे पचा लेना मुश्किल होगा; गांव के लोगों की निन्दा सुनने के अतिरिक्त भी रासमणि के मुंह से जो निकलेगा वह कुछ सरस न होगा। इसलिए दुशाले को फिर दुपट्टे में छिपाकर भवानीचरण को निराश लौट आना पड़ा।

कालीचरण रोज़ पूछता, "वाबूजी ! मेम का क्या हुआ ?" और भवानीचरण रोज़ हंसते हुए कह देते, "अभी जल्दी क्या है ? पूजा तो आने दो।"

किन्तु प्रतिदिन मुंह पर ज़बरदस्ती हंसी खींच लाकर वेटे को सान्त्वना देते जाना उनके लिए कठिन हो गया। आज चतुर्थी हो गई। सप्तमी को सिर्फ तीन दिन और रह गए हैं। भवानीचरण वहाने से असमय ही अन्तःपुर में जा पहुंचे और वातचीत में सहसा वोल उठे, "देखो, मैं कई दिनों से देख रहा हूं कि कालीचरण का स्वास्थ्य र वरावर गिरता जा रहा है।"

रासमणि ने कहा, "भगवान न करे ऐसा हो। उसका स्वास्थ्य क्यों गिरने लगा ? मैं भी रोज़ देखती हूं, मुझे तो ठीक लगता है।"

भवानीचरण ने कहा, "देखती नहीं, चुपचाप गुमसुम वैठा रहता है। न जाने क्या सोचा करता है।"

रासमणि वोलीं, "वाह ! घड़ी-भर तो उससे चुप वैठा नहीं जाता ! उसे चिन्ता क्या है ? कहां क्या शरारत करे यही सोचा करता होगा।"

किले की दीवार में कहीं छिद्र नहीं मिला, पत्थर पर गोले का दाग भी न लगने पाया। गहरी सांस लेकर सिर पर हाथ फेरते हुए भवानीचरण वाहर चले आए और चवूतरे पर वैठ गहरा कश लगा-कर हुक्का पीने लगे।

पंचमी का दिन आया तो थाली की खीर और दही ज्यों का त्यों पड़ा रह गया। रात को भी सिर्फ एक सन्देश खाकर उठ गए, पूरी

को हाथ भी न लगाया। पूछने पर बोले, "बिलकुल भूख नहीं है।"

इस बार क़िले की दीवार में एक बड़ा छिद्र दिखाई पड़ा। छठ को रासमणि ने स्वयं कालीचरण को एकान्त में बुलाया और सिर पर हाथ फेरकर बोलीं, "बेटा, अब तुम बड़े हो गए पर अब भी हर चीज़ के लिए हठ करते हो! यह बुरी बात है। जानते हो, जो चीज़ दुर्लभ है, मिल नहीं सकती, उसपर मन चलाना आधी चोरी है।"

कालीचरण ने कहा, "मैं क्या करूं? बाबूजी ने कहा था कि गुड़िया ला देंगे।"

तब रासमणि उसे बाबू के आश्वासन का अर्थ समझाने लगीं। पिता के उस आश्वासन में कितना स्नेह, कितना प्यार और कितनी वेदना भरी है, पर उस चीज़ के लाने से गरीब घर पर कितना बोझ पड़ेगा, यह सब उसे बताने लगी। यह एक नई बात थी। आज तक उन्होंने कभी कोई बात प्रेम से समझाकर कालीचरण को नहीं बताई थी। कभी अपने किसी आदेश को नरम करने की आवश्यकता ही उन्हें नहीं पड़ी। इसलिए ऐसे प्रेम से समझाने पर कालीचरण को आश्चर्य हुआ और बालक होने पर भी इतना तो समझ ही गया कि मा के हृदय में उसके लिए कहीं गहरा दर्द है। फिर भी मेम की ओर से अपना मन न हटा सका। उसका मुंह फूल गया। वह लकड़ी से ज़मीन कुरेदने लगा।

समझते न देख रासमणि फिर कठोर हो गई और तेज़ स्वर में बोलीं, "चाहे क्रुद्ध हो या रोओ, जो चीज़ मिलने की नहीं वह नहीं मिलेगी।" और ज़्यादा समय नष्ट न कर तेज़ी से काम को चली गईं।

कालीचरण बाहर आ गया। भवानीचरण अकेले बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। लड़के को दूर से देखते ही जल्दी से उठकर चल दिए जैसे किसी ज़रूरी काम से कहीं जाने की याद आ गई हो। बेटा दौड़ा आया और बोला, "बाबूजी, मेरी वह मेम···"

आज भवानीचरण हंस नहीं सके। प्यार से बेटे के

तो शायद वगलाचरण मान जाता, पर वह जानता है कि इसे पचा लेना मुश्किल होगा; गांव के लोगों की निन्दा सुनने के अतिरिक्त भी रासमणि के मुंह से जो निकलेगा वह कुछ सरस न होगा। इसलिए दुशाले को फिर दुपट्टे में छिपाकर भवानीचरण को निराश लौट आना पड़ा।

कालीचरण रोज पूछता, "बाबूजी ! मेम का क्या हुआ ?" और भवानीचरण रोज हंसते हुए कह देते, "अभी जल्दी क्या है ? पूजा तो आने दो।"

किन्तु प्रतिदिन मुंह पर जबरदस्ती हंसी खींच लाकर बेटे को सान्त्वना देते जाना उनके लिए कठिन हो गया। आज चतुर्थी हो गई। सप्तमी को सिर्फ तीन दिन और रह गए हैं। भवानीचरण बहाने से असमय ही अन्तःपुर में जा पहुंचे और बातचीत में सहसा बोल उठे, "देखो, मैं कई दिनों से देख रहा हूं कि कालीचरण का स्वास्थ्य र बराबर गिरता जा रहा है।"

रासमणि ने कहा, "भगवान न करे ऐसा हो। उसका स्वास्थ्य क्यों गिरने लगा ? मैं भी रोज देखती हूं, मुझे तो ठीक लगता है।"

भवानीचरण ने कहा, "देखती नहीं, चुपचाप गुमसुम बैठा रहता है। न जाने क्या सोचा करता है।"

रासमणि बोलीं, "वाह ! घड़ी-भर तो उससे चुप बैठा नहीं जाता ! उसे चिन्ता क्या है ? कहां क्या शरारत करे यही सोचा करता होगा।"

किले की दीवार में कहीं छिद्र नहीं मिला, पत्थर पर गोले का दाग भी न लगने पाया। गहरी सांस लेकर सिर पर हाथ फेरते हुए भवानीचरण बाहर चले आए और चबूतरे पर बैठ गहरा कश लगाकर हुक्का पीने लगे।

पंचमी का दिन आया तो थाली की खीर और दही ज्यों का त्यों पड़ा रह गया। रात को भी सिर्फ एक सन्देश खाकर उठ गए, पूरी

ो हाथ भी न लगाया। पूछने पर बोले, "बिलकुल भूख नहीं है।"

इस बार किले की दीवार में एक बड़ा छिद्र दिखाई पड़ा। छठ की रासमणि ने स्वयं कालीचरण को एकान्त में बुलाया और सिर पर हाथ फेरकर बोली, "बेटा, अब तुम बड़े हो गए पर अब भी हर चीज के लिए हठ करते हो! यह बुरी बात है। जानते हो, जो चीज दुर्लभ है, मिल नहीं सकती, उसपर मन चलाना आधी चोरी है।"

कालीचरण ने कहा, "मैं क्या करूं? बाबूजी ने कहा था कि गुड़िया ला देंगे।"

तब रासमणि उसे बाबू के आश्वासन का अर्थ समझाने लगीं। पिता के उस आश्वासन में कितना स्नेह, कितना प्यार और कितनी वेदना भरी है, पर उस चीज के लाने से गरीब घर पर कितना बोझ पड़ेगा, यह सब उसे बताने लगी। यह एक नई बात थी। आज तक उन्होंने कभी कोई बात प्रेम से समझाकर कालीचरण को नहीं बताई थी। कभी अपने किसी आदेश को नरम करने की आवश्यकता ही उन्हें नहीं पड़ी। इसलिए ऐसे प्रेम से समझाने पर कालीचरण को आश्चर्य हुआ और बालक होने पर भी इतना तो समझ ही गया कि मा के हृदय में उसके लिए कहीं गहरा दर्द है। फिर भी मेम की ओर से अपना मन न हटा सका। उसका मुंह फूल गया। वह लकड़ी से जमीन कुरेदने लगा।

समझते न देख रासमणि फिर कठोर हो गईं और तेज स्वर में बोलीं, "चाहे क्रुद्ध हो या रोओ, जो चीज मिलने की नहीं वह नहीं मिलेगी।" और ज्यादा समय नष्ट न कर तेजी से काम को चली गईं।

कालीचरण बाहर आ गया। भवानीचरण अकेले बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। लड़के को दूर से देखते ही जल्दी से उठकर चल दिए जैसे किसी जरूरी काम से कहीं जाने की याद आ गई हो। बेटा दौड़ा आया और बोला, "बाबूजी, मेरी वह मेम···"

आज भवानीचरण हंस नहीं सके। प्यार से बेटे को खींचकर

भवानीचरण को राज़ी करने में बहुत कठिनाई हुई। ज़मींदारी का तो कुछ ज़्यादा संभालने को है नहीं, यह कहने पर भवानीचरण को बड़ी चोट लगती, इसलिए रासमणि उसे दबा गई, इतना ही कहा, 'आखिर कालीचरण को लायक तो बनाना ही है।' मुश्किल यह थी कि पीढ़ियों से इस वंश में कोई घर छोड़कर बाहर नहीं गया, फिर भी प्रायः सबके सब योग्य ही निकले। भवानीचरण परदेश से बहुत डरते थे। वे समझ ही न पाते कि कालीचरण जैसे अबोध बच्चे को कलकत्ते जैसे नगर में भेजने की बात किसीके दिमाग में आ कैसे सकती है। किन्तु जब गांव के सबसे बुद्धिमान बगलाचरण ने रासमणि का समर्थन करते हुए कह दिया, 'कालीचरण वकील हो जाएगा तो एक दिन स्वयं ही उस चोरी गए वसीयतनामे को ढूंढ़ निकालेगा; यह विधि का लेख है जो मिटाने से नहीं मिट सकता, उसे कलकत्ता जाना ही पड़ेगा,' उनकी इस बात से भवानीचरण को काफी सांत्वना मिली। व पुराने कागज़ निकाल लाए और वसीयतनामे की चोरी के सम्बन्ध में कालीचरण को समझाने लगे। माता के मन्त्री का वह कार्य सुचारु रूप से सम्पादन कर रहा था, किन्तु पिता के इस कार्य में वह कुछ विशेष योग न दे सका।

बात यह थी कि परिवार में हुए इस पुराने अन्याय के प्रति उसके मन में कोई पर्याप्त उत्तेजना न थी। हां, पिता की बातों पर सिर हिलाता गया।

कलकत्ता जाने के एक दिन पूर्व रासमणि ने कालीचरण के गले में एक रक्षाकवच बांध दिया। फिर पचास रुपये देकर बोलीं, "इन्हें रखो कभी कोई आपत्ति आ जाए तो इनसे काम लेना।" घर-खर्च में बड़ी चतुरता एवं कष्ट से बचाए इन रुपयों को कालीचरण ने वास्तविक और पवित्र कवच समझकर ले लिया; मन ही मन निश्चय किया कि मां के आशीर्वाद-रूप में इन रुपयों को सदा सुरक्षित रखेगा, कभी खर्च न करेगा।

आजकल भवानीचरण वसीयतनामे के बारे में बहुत कम बातचीत करते हैं। अब तो केवल कालीचरण ही उनकी बातचीत का केन्द्र बन गया है। उसीकी बात करने के लिए गांव में घर-घर घूमा करते हैं। जब उसका कोई पत्र आता है तो उसे लेकर सब जगह सुना आते हैं। उनके वंश में कभी कोई कलकत्ता नहीं गया इसलिए कलकत्ता के गौरव ने उनकी कल्पना को उत्तेजित कर दिया था। "हमारा कालीचरण कलकत्ता में पढ़ता है; वहां की कोई बात उससे छिपी नहीं, यहां तक कि हुगली के पास गंगा पर बहनेवाले पुल की बात भी जानता है।" "सुना भैया, गंगा पर एक और बड़ा पुल बन रहा है, कालीचरण का जो पत्र आज आया है उससे यह खबर मिली है।" कहते हुए वे चश्मा निकाल लेते और उसे खूब पोंछकर पूरा पत्र पढ़कर सुना देते, "देखो, ज़माना क्या आ गया! पुल बनेगा, उसपर से कुत्ता-बिल्ली सब गंगा पार करेंगे, कलिकाल में जो न हो जाए!" जो मिलता उसीसे कहते, "मैं कहता हूं, गंगाजी अब ज्यादा दिन इस धरती पर न ठहरेंगी।" और मन ही मन आशा करते कि गंगाजी जब जाने लगेंगी तो उसकी खबर भी पहले कालीचरण के पत्र में ही मिलेगी।

कालीचरण दूसरे के मकान में रहकर सुबह-शाम कुछ काम या ट्यूशन करके किसी तरह अपनी पढ़ाई चलाने लगा। कठोर परिश्रम से उसने प्रवेशिका परीक्षा पास की। उसे फिर छात्रवृत्ति मिली। इस आश्चर्यजनक घटना पर भवानीचरण के मन में ऐसी उत्तेजना हुई कि सारे गांव को निमन्त्रित करने को व्याकुल हो उठे, परन्तु रासमणि की ओर से किसी प्रकार का उत्साह न मिलने से दावत का कार्यक्रम स्थगित हो गया।

इस बार कालीचरण को कालेज के पास ही एक 'मेस' में जगह मिल गई। मेस के अधिकारी ने उसे नीचे की मंजिल की एक कोठरी रहने के लिए दे दी है। दोनों समय खाना भी वहीं से मिल जाता

है; बदले में कालीचरण उसके लड़कों को पढ़ा देता है। इस सीलन-भरी कोठरी में रहने में कालीचरण को इतना ही फायदा था कि दूसरा कोई साझीदार न होने से वह अपनी पढ़ाई निर्विघ्न कर सकता था।

मेस की दूसरी मंजिल में बड़े घर का एक लड़का रहता है। यद्यपि मेस की जगह सरलतापूर्वक वह कोई स्वतन्त्र मकान लेकर उसमें रह सकता है, परन्तु उसे मेस में रहना पसंद है। घर के लोगों के वैसा अनुरोध करने पर वह यह कहकर टाल देता कि घर के अपने आदमियों के बीच रहने से पढ़ाई-लिखाई नहीं होगी। पर सच पूछा जाए तो असल कारण यह नहीं है। वस्तुतः उसे घूमने-फिरने, सैर-सपाटे का शौक है, और घर में रहने पर घरवालों से तो पिण्ड छुड़ाना मुश्किल होता ही है, उनकी फरमाइशों और ज़िम्मेदारियों का बोझ भी उठाना पड़ता है। 'उससे ऐसा व्यवहार उचित नहीं', 'ऐसा करने से निन्दा होगी' इत्यादि उपदेशों की झंझट में कौन पड़े इसलिए शैलेन्द्र के लिए मेस ही स्वतन्त्र और अच्छी जगह है। यहां आदमी तो बहुत हैं पर अपने ऊपर उनकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं। आते-जाते हैं, गप-शप करते हैं, नदी की तरह सदा बहते रहते हैं।

शैलेन्द्र की धारणा थी कि वह सहृदय है, इसलिए भद्र जन है, अच्छा आदमी है। इस धारणा में एक लाभ है कि आदमी को 'अच्छा आदमी' बनने के लिए कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता। अहंकार हाथी-घोड़े जैसी खर्चीली चीज़ नहीं है, उसे बहुत कम खर्च और बिना खुराक के भी मोटा-ताज़ा बनाए रखा जा सकता है। फि शैलेन्द्र में तो खर्च करने की शक्ति भी थी और वैसी आदत भी थी इसलिए वह अपने अहंकार को तरह-तरह की कीमती खुराक देक सुन्दर एवं सुसज्जित भी बनाए रखता है।

शैलेन्द्र के मन में दया-माया बहुत थी। दूसरों के दुःख-कष्ट दू करने में बड़ा उत्साह रखता था—इतना ज्यादा कि अगर कोई अप

दुःख दूर करने के लिए उसका आश्रय न लेता तो उसे वह स्वयं दुःख देने पहुंच जाता और उसकी दया निर्दय होकर विपज्जनक हो उठती।

मेस के लोगों को सिनेमा-थियेटर दिखाना, होटल में खिलाना-पिलाना, जरूरत पर रुपये उधार देकर फिर उसे भूल जाना इत्यादि गुण उसमें थे। अगर कोई नवविवाहित मुग्ध युवक ऐसा होता कि पूजा की छुट्टियों में घर जाने के समय उसकी जमापूंजी बासे का खर्च चुकाने में समाप्त हो जाती, तो नई बहू के मनोहरण के योग्य साबुन, एसेंस इत्यादि प्रसाधन-सामग्री और साथ ही नये फैशन के एकाध ब्लाउज इत्यादि का प्रबन्ध कर लेने में उसे कोई दिक्कत न होती। शैलेन्द्र की सुरुचि पर विश्वास करके वह कहता, "तुम्हीं अपनी पसन्द से खरीदवा दो।" जब वह दुकान में कोई मामूली चीज खरीदने के लिए पसन्द करता तो शैलेन्द्र कहता, "छिः-छिः, क्या पसन्द है जनाब की!" फिर तो शैलेन्द्र सबसे अच्छी और सुन्दर वस्तुएं स्वयं छांट देता। दाम सुनकर युवक खरीदार जब सकते में आ जाता तब दाम चुकाने का भार शैलेन्द्र स्वयं अपने ऊपर ले लेता। युवक बार-बार आपत्ति करता परन्तु उसकी आपत्ति निष्फल होती।

इस प्रकार शैलेन्द्र अपने चतुर्दिक् के लोगों का आश्रयस्वरूप बन गया था। लोगों का उपकार करने का शौक उसमें इतना प्रबल हो गया था कि जो उसका आश्रय न स्वीकार करता उसे वह किसी तरह माफ नहीं कर पाता था।

उधर कालीचरण नीचे की सीलन-भरी अंधेरी कोठरी में मैली चटाई पर बैठा, फटा बनियान पहने किताबों में आंख गड़ाए पढ़ता। किसी तरह उसे छात्रवृत्ति प्राप्त करनी ही है।

जब कलकत्ता आ रहा था तब मां ने अपने सिर की कसम दिला-कर कहा था कि बड़े आदमियों के लड़कों का साथ कर [illegible] में न पड़ना। केवल मां के आदेश की रक्षा के लिए ही नहीं, अपने द्वारा अंगीकृत गरीबी की रक्षा के लिए भी [illegible]

के लड़कों से दूर रहना आवश्यक है। इसीलिए वह किसी दिन भी शैलेन के पास नहीं गया यद्यपि वह जानता था कि शैलेन की अनुकूलता से उसकी कितनी ही समस्याएं बात की बात में हल हो सकती हैं। इतने पर भी बड़े से बड़े संकट में शैलेन की कृपा प्राप्त करने का लोभ उसे कभी नहीं हुआ। अपनी अकिंचनता के एकांत अंधकार में छिपा रहना उसे ज़्यादा प्रिय था।

किन्तु शैलेन उसकी यह अकड़ न सह सका। खानपान, कपड़े-लत्ते और रहन-सहन में कालीचरण की दीनता इतनी प्रकट है कि आंखों को खटकती है। सीढ़ी पर चढ़ते समय कालीचरण के कपड़े-लत्ते तथा अन्य चीज़ों की ओर उसकी नज़र जाती तो उसे अपने अपराधी होने का अनुभव होता। फिर कालीचरण के गले में कवच-तावीज़—लटकता है, वह दोनों समय संध्या-पूजा करता है। शैलेन तथा उसके साथियों का दल उसके इस गंवारूपन की हंसी उड़ाता रहता है। अपनी खानपान-पार्टी में एक दिन कृपा करके उन लोगों ने कालीचरण को बुलवाया पर कालीचरण ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि पार्टी का खाना-पीना उसे सह्य नहीं, न उसकी आदत ही वैसी है। उसकी अस्वीकृति से शैलेन और उसका दल और क्रुद्ध हो उठा।

फलस्वरूप कुछ दिनों तक ऊपर के कमरे में ऐसा ऊधम और गाना-बजाना शुरू हुआ कि पढ़ाई में मन लगाना कालीचरण के लिए असंभव हो गया। दिन में गोलदिग्घी के बगीचे में पेड़ के नीचे बैठकर पढ़ता और सुबह बड़े तड़के, जब और लोग सोते रहते, उठकर पढ़ने लगता। खाने-पीने की तकलीफ, सीलन-भरी कोठरी में रहने और बहुत ज्यादा मेहनत के कारण कालीचरण को सिरदर्द की बीमारी हो गई। कभी-कभी तो कई-कई दिनों तक वह बिस्तर से उठ ही न पाता था।

वह जानता था कि उसकी इस बीमारी की खबर पाने पर पिता

उसे किसी तरह कलकत्ता में न रहने देंगे, बल्कि घबराकर खुद भी कलकत्ता दौड़े आ सकते हैं। उधर भवानीचरण का खयाल था कि कलकत्ता में कालीचरण जितना सुखी है उसकी कल्पना भी गांववाले नहीं कर सकते। उनकी कल्पना थी कि गांव में अपने-आप पैदा होनेवाले पेड़-पौधों की तरह कलकत्ता की भूमि में हर तरह के आराम के साधन खुद ही पैदा होते रहते हैं और वहां के सब निवासी यह सुख भोगते हैं। कालीचरण ने पिता की इस गलत कल्पना को सुधारने की कभी कोशिश नहीं की। बहुत ज्यादा कष्ट के समय भी वह पिता को बराबर पत्र लिखता रहा। परन्तु जब उसकी तकलीफ में शैलेन और उसके साथी ठीक उसके सिर पर ही ऊधम मचाने लगे, तब उसका दुःख सीमा से बढ़ गया। फिर भी वह ज्यों-ज्यों गरीबी का अपमान और दुःख भोगने लगा, त्यों-त्यों उसके मन में यह निश्चय दृढ़ होने लगा कि वह माता-पिता को इस दुःख से छुड़ाकर ही दम लेगा।

कालीचरण ने सबकी निगाह बचाकर चुपचाप अपनी पढ़ाई-लिखाई जारी रखने की कोशिश की, पर उन लोगों के ऊधम में कोई कमी न आई, बल्कि उसे तंग करने की नई-नई तरकीबें की जाने लगीं। एक दिन उसने देखा कि उसके जूतों की जोड़ी का एक जूता गायब है और उसकी जगह एक नया जूता रखा है। दोनों पावों में दो तरह के जूते पहनकर कालेज जाना संभव न था, इसलिए मोची से एक जोड़ी पुराने जूते खरीदने पड़े। एक दिन ऊपर के एक लड़के ने सहसा उसकी कोठरी में आकर पूछा, "आप क्या ऊपर से भूलकर मेरा सिगरेट-केस उठा लाए हैं? कहीं दीख नहीं रहा है।"

कालीचरण झुंझलाकर बोला, "मैं आप लोगों के कमरे में नहीं गया।"

"अरे! यही तो पड़ा है..." कहते हुए आगे बढ़कर उस लड़के ने कोठरी के एक कोने से सिगरेट-केस उठा लिया और चला गया।

इन बातों से ऊबकर कालीचरण ने निश्चय कर लिया था कि

[illegible] दिन भी शैलेन के पास नहीं गया यद्यपि वह जानता था कि शैलेन की अनुकूलता से उसकी कितनी ही समस्याएं बात की बात में हल हो सकती हैं। इतने पर भी बड़े से बड़े संकट में शैलेन की कृपा प्राप्त करने का लोभ उसे कभी नहीं हुआ। अपनी अकिंचनता के एकांत अंधकार में छिपा रहना उसे ज़्यादा प्रिय था।

किन्तु शैलेन उसकी यह अकड़ न सह सका। खानपान, कपड़े-लत्ते और रहन-सहन में कालीचरण की दीनता इतनी प्रकट है कि आंखों को खटकती है। सीढ़ी पर चढ़ते समय कालीचरण के कपड़े-लत्ते तथा अन्य चीज़ों की ओर उसकी नज़र जाती तो उसे अपने अपराधी होने का अनुभव होता। फिर कालीचरण के गले में कवच-तावीज़—लटकता है, वह दोनों समय संध्या-पूजा करता है। शैलेन तथा उसके साथियों का दल उसके इस गंवारूपन की हंसी उड़ाता रहता है। अपनी खानपान-पार्टी में एक दिन कृपा करके उन लोगों ने कालीचरण को बुलवाया पर कालीचरण ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि पार्टी का खाना-पीना उसे सह्य नहीं, न उसकी आदत ही वैसी है। उसकी अस्वीकृति से शैलेन और उसका दल और क्रुद्ध हो उठा।

फलस्वरूप कुछ दिनों तक ऊपर के कमरे में ऐसा ऊधम और गाना-बजाना शुरू हुआ कि पढ़ाई में मन लगाना कालीचरण के लिए असंभव हो गया। दिन में गोलदिग्घी के बगीचे में पेड़ के नीचे बैठकर पढ़ता और सुबह बड़े तड़के, जब और लोग सोते रहते, उठकर पढ़ने लगता। खाने-पीने की तकलीफ, सीलन-भरी कोठरी में रहने और बहुत ज़्यादा मेहनत के कारण कालीचरण को सिरदर्द की बीमारी हो गई। कभी-कभी तो कई-कई दिनों तक वह बिस्तर से उठ ही न पाता था।

वह जानता था कि उसकी इस बीमारी की खबर पाने पर पिता

उसे किसी तरह कलकत्ता में न रहने देंगे, बल्कि घबराकर खुद भी कलकत्ता दौड़े आ सकते हैं। उधर भवानीचरण का खयाल था कि कलकत्ता में कालीचरण जितना सुखी है उसकी कल्पना भी गांववाले नहीं कर सकते। उनकी कल्पना थी कि गांव में अपने-आप पैदा होनेवाले पेड़-पौधों की तरह कलकत्ता की भूमि में हर तरह के आराम के साधन खुद ही पैदा होते रहते हैं और वहां के सब निवासी यह सुख भोगते हैं। कालीचरण ने पिता की इस गलत कल्पना को सुधारने की कभी कोशिश नहीं की। बहुत ज्यादा कष्ट के समय भी वह पिता को बराबर पत्र लिखता रहा। परन्तु जब उसकी तकलीफ में शैलेन और उसके साथी ठीक उसके सिर पर ही ऊधम मचाने लगे, तब उसका दुःख सीमा से बढ़ गया। फिर भी वह ज्यों-ज्यों गरीबी का अपमान और दुःख भोगने लगा, त्यों-त्यों उसके मन में यह निश्चय दृढ़ होने लगा कि वह माता-पिता को इस दुःख से छुड़ाकर ही दम लेगा।

कालीचरण ने सबकी निगाह बचाकर चुपचाप अपनी पढ़ाई-लिखाई जारी रखने की कोशिश की, पर उन लोगों के ऊधम में कोई कमी न आई, बल्कि उसे तंग करने की नई-नई तरकीबें की जाने लगीं। एक दिन उसने देखा कि उसके जूतों की जोड़ी का एक जूता गायब है और उसकी जगह एक नया जूता रखा है। दोनों पावों में दो तरह के जूते पहनकर कालेज जाना संभव न था, इसलिए मोची से एक जोड़ी पुराने जूते खरीदने पड़े। एक दिन ऊपर के एक लड़के ने सहसा उसकी कोठरी में आकर पूछा, "आप क्या ऊपर से भूलकर मेरा सिगरेट-केस उठा लाए हैं? कहीं दीख नहीं रहा है।"

कालीचरण झुंझलाकर बोला, "मैं आप लोगों के कमरे में नहीं गया।"

"अरे! यहीं तो पड़ा है···" कहते हुए आगे बढ़कर उस लड़के ने कोठरी के एक कोने से सिगरेट-केस उठा लिया और चला गया।

इन बातों से ऊबकर कालीचरण ने निश्चय कर लिया था कि

इस वार एफ० ए० की परीक्षा में भी छात्रवृत्ति मिल गई तो कहीं दूसरी जगह जाकर रहेगा।

मेस में हर साल धूमधाम से सरस्वती-पूजा होती है। अधिकांश खर्च शैलेन देता है। पर सभी कुछ न कुछ चन्दा देते हैं। पिछले साल, उपेक्षा की वृत्ति से कोई कालीचरण से चन्दा लेने नहीं आया पर इस साल उसे तंग करने के लिए लड़कों ने लाकर चन्दे का रजिस्टर उसके सामने रख दिया। आज तक कालीचरण ने इन लड़कों से कभी कोई सहायता नहीं ली थी, न उनके आमोद-प्रमोद में ही कभी शामिल हुआ था; पर जव लड़के उससे चन्दा मांगने आए तो उसने न जाने क्या सोचकर पांच रुपये का नोट निकालकर दे दिया। इतना चन्दा शैलेन को कभी किसी दूसरे लड़के से नहीं मिला था। कालीचरण को गरीब और कंजूस मानकर सव उसका तिरस्कार ही करते आए थे इसीलिए आज उसका यह दान उनके लिए विलकुल असह्य । गया। इस गरीवी में यह अकड़ ! क्या वह हमपर अपना रोव जमाना चाहता है !

कालीचरण दूसरे के घर खाता है। सदा समय पर खाना तैयार नहीं होता, फिर रसोइया और नौकर ही उसके भाग्यविधाता हैं, कितनी ही वार उसे विना खाए ही रह जाना पड़ता है। इसीलिए नाश्ते के लिए उसे कुछ रकम अपने पास रखनी पड़ती है। आज उसकी यह पूंजी भी सरस्वती देवी के चरणों में समर्पित हो गई।

कालीचरण की सिरदर्द की बीमारी वढ़ती ही गई। परीक्षा में फेल तो नहीं हुआ पर छात्रवृत्ति नहीं मिली। फलतः खर्च को पूरा करने के लिए एक ट्यूशन और करने को विवश हुआ तथा सव उपद्रवों के वावजूद इस कोठरी को न छोड़ सका।

ऊपर के लड़कों ने समझा था कि अव कालीचरण यहां न आएगा। परन्तु उनकी आशा पूरी नहीं हुई। मामूली धोती और वही चायना-कोट पहने कालीचरण ने कोठरी में प्रवेश किया और मैले कपड़े में

बंधी गठरी तथा टिन का बक्स कुली के सिर से उतरवाकर रखवा लिया। उस गठरी में मां द्वारा स्नेह से बेटे को दिया हुआ अचार, अमावट इत्यादि तरह-तरह की चीजें थी। कालीचरण जानता था कि उसकी अनुपस्थिति में ऊपर के लड़के उत्सुकतावश उसकी कोठरी में आते रहते हैं। मां-बाप की दी प्रेम की भेंट उनके हाथ पकड़ाकर अपमानित हो, यह वह नही चाहता था। वे चीजें उसके लिए अमृत हैं और उनका महत्त्व गांव के गरीब लोग ही जान सकते हैं, शहर के तिकड़मी छात्र उनका मूल्य क्या समझें! फिर वे चीजें जिन पात्रों में रखी हैं उनकी अवज्ञा ये लड़के जरूर करेंगे जो उसके लिए असह्य होगा। इसलिए उसने कोठरी में ताला लगाना उचित समझा। जब कहीं जाता तो ताला बन्द करके ही जाता।

उसकी यह नई बात लड़कों को और खटकी। शैलेन ने हंसी उड़ाई। एक दिन उसने साथियों से कहा, "यार! बात क्या है? कहां का खजाना लाया है कि घड़ी-घड़ी ताला बन्द करता है। कोई पता तो लगाओ।" सभीने उत्सुकता प्रकट की।

कालीचरण का ताला मामूली था और अन्य चाबियों से खुल सकता था। एक दिन शाम को जब कालीचरण ट्यूशन पर चला गया तो ताला खोलकर दो-तीन लड़के उत्सुकतावश उसके कमरे में लालटेन लेकर घुस गए। सब चीजें उलट-पलटकर देखीं। खोजते-खोजते तकिये के नीचे एक चाबी दिखाई पड़ी। उससे टिन का सन्दूक खोला गया पर उसमें भी मैले कपड़े, कापियां, कैंची इत्यादि मामूली सामान मिला। सन्दूक बन्द करके वे चलने की बात सोच ही रहे थे कि बक्स के नीचे रूमाल में बंधी हुई कोई चीज दिखाई पड़ी। खोलने पर उसमें एक पुड़िया निकली और जब पुड़िया खोली गई तो उसमें से पचास रुपये का एक नोट निकल आया।

अब तो सभी अट्टहास कर उठे। समझ गए कि वह बार-बार ताला बन्द करता है। उसकी कंजूस भी

इस बार एफ० ए० की परीक्षा में भी छात्रवृत्ति मिल गई तो कहीं दूसरी जगह जाकर रहेगा।

मेस में हर साल धूमधाम से सरस्वती-पूजा होती है। अधिकांश खर्च शैलेन देता है। पर सभी कुछ न कुछ चन्दा देते हैं। पिछले साल, उपेक्षा की वृत्ति से कोई कालीचरण से चन्दा लेने नहीं आया पर इस साल उसे तंग करने के लिए लड़कों ने लाकर चन्दे का रजिस्टर उसके सामने रख दिया। आज तक कालीचरण ने इन लड़कों से कभी कोई सहायता नहीं ली थी, न उनके आमोद-प्रमोद में ही कभी शामिल हुआ था; पर जब लड़के उससे चन्दा मांगने आए तो उसने न जाने क्या सोचकर पांच रुपये का नोट निकालकर दे दिया। इतना चन्दा शैलेन को कभी किसी दूसरे लड़के से नहीं मिला था। कालीचरण को गरीब और कंजूस मानकर सब उसका तिरस्कार ही करते आए थे इसीलिए आज उसका यह दान उनके लिए बिलकुल असह्य गया। इस गरीबी में यह अकड़ ! क्या वह हमपर अपना रोब जमाना चाहता है !

कालीचरण दूसरे के घर खाता है। सदा समय पर खाना तैयार नहीं होता, फिर रसोइया और नौकर ही उसके भाग्यविधाता हैं, कितनी ही बार उसे बिना खाए ही रह जाना पड़ता है। इसीलिए नाश्ते के लिए उसे कुछ रकम अपने पास रखनी पड़ती है। आज उसकी यह पूंजी भी सरस्वती देवी के चरणों में समर्पित हो गई।

कालीचरण की सिरदर्द की बीमारी बढ़ती ही गई। परीक्षा में फेल तो नहीं हुआ पर छात्रवृत्ति नहीं मिली। फलतः खर्चे को पूरा करने के लिए एक ट्यूशन और करने को विवश हुआ तथा सब उपद्रवों के बावजूद इस कोठरी को न छोड़ सका।

ऊपर के लड़कों ने समझा था कि अब कालीचरण यहां न आएगा। परन्तु उनकी आशा पूरी नहीं हुई। मामूली धोती और वही चायनाकोट पहने कालीचरण ने कोठरी में प्रवेश किया और मैले कपड़े में

बंधी गठरी तथा टिन का बक्स कुली के सिर से उतरवाकर रखवा लिया। उस गठरी में मां द्वारा स्नेह से बेटे को दिया हुआ अचार, ..१५८ इत्यादि तरह-तरह की चीजें थी। कालीचरण जानता था कि उसकी अनुपस्थिति में ऊपर के लड़के उत्सुकतावश उसकी कोठरी में आते रहते हैं। मां-बाप की दी प्रेम की भेंट उनके हाथ पकड़ाकर अपमानित हो, यह वह नहीं चाहता था। वे चीजें उसके लिए अमृत हैं और उनका महत्त्व गांव के गरीब लोग ही जान सकते हैं, शहर के तिकड़मी छात्र उनका मूल्य क्या समझें! फिर वे चीजें जिन पात्रों में रखी हैं उनकी अवज्ञा ये लड़के जरूर करेंगे जो उसके लिए असह्य होगा। इसलिए उसने कोठरी में ताला लगाना उचित समझा। जब कहीं जाता तो ताला बन्द करके ही जाता।

उसकी यह नई बात लड़कों को और खटकी। मैलेन ने हंसी उड़ाई। एक दिन उसने साथियों से कहा, "यार! बात क्या है? कहां का खजाना लाया है कि घड़ी-घड़ी ताला बन्द करता है। कोई पता तो लगाओ।" सभीने उत्सुकता प्रकट की।

कालीचरण का ताला मामूली था और अन्य चाबियों से खुल सकता था। एक दिन शाम को जब कालीचरण ट्यूशन पर चला गया तो ताला खोलकर दो-तीन लड़के उत्सुकतावश उसके कमरे में लालटेन लेकर घुस गए। सब चीजें उलट-पलटकर देखीं। खोजते-खोजते तकिये के नीचे एक चाबी दिखाई पड़ी। उससे टिन का सन्दूक खोला गया पर उसमें भी मैले कपड़े, कापियां, कैंची इत्यादि मामूली सामान मिला। सन्दूक बन्द करके वे चलने की बात सोच ही रहे थे कि बक्स के नीचे रुमाल में बंधी हुई कोई चीज दिखाई पड़ी। खोलने पर उसमें एक पुड़िया निकली और जब पुड़िया खोली गई तो उसमें से पचास रुपये का एक नोट निकल आया।

अब तो सभी अट्टहास कर उठे। समझ गए कि इसीके लिए वह बार-बार ताला बन्द करता है। उसकी कंजूस और सन्देह-भरी

इस बार एफ० ए० की परीक्षा में भी छात्रवृत्ति मिल गई तो कहीं दूसरी जगह जाकर रहेगा।

मेस में हर साल धूमधाम से सरस्वती-पूजा होती है। अधिकांश खर्च शैलेन देता है। पर सभी कुछ न कुछ चन्दा देते हैं। पिछले साल, उपेक्षा की वृत्ति से कोई कालीचरण से चन्दा लेने नहीं आया पर इस साल उसे तंग करने के लिए लड़कों ने लाकर चन्दे का रजिस्टर उसके सामने रख दिया। आज तक कालीचरण ने इन लड़कों से कभी कोई सहायता नहीं ली थी, न उनके आमोद-प्रमोद में ही कभी शामिल हुआ था; पर जब लड़के उससे चन्दा मांगने आए तो उसने न जाने क्या सोचकर पांच रुपये का नोट निकालकर दे दिया। इतना चन्दा शैलेन को कभी किसी दूसरे लड़के से नहीं मिला था। कालीचरण को गरीब और कंजूस मानकर सब उसका तिरस्कार ही करते आए थे इसीलिए आज उसका यह दान उनके लिए बिलकुल असह्य हो गया। इस गरीबी में यह अकड़! क्या वह हमपर अपना रोब जमाना चाहता है!

कालीचरण दूसरे के घर खाता है। सदा समय पर खाना तैयार नहीं होता, फिर रसोइया और नौकर ही उसके भाग्यविधाता हैं, कितनी ही बार उसे बिना खाए ही रह जाना पड़ता है। इसीलिए नाश्ते के लिए उसे कुछ रकम अपने पास रखनी पड़ती है। आज उसकी यह पूंजी भी सरस्वती देवी के चरणों में समर्पित हो गई।

कालीचरण की सिरदर्द की बीमारी बढ़ती ही गई। परीक्षा में फेल तो नहीं हुआ पर छात्रवृत्ति नहीं मिली। फलतः खर्च को पूरा करने के लिए एक ट्यूशन और करने को विवश हुआ तथा सब उपद्रवों के बावजूद इस कोठरी को न छोड़ सका।

ऊपर के लड़कों ने समझा था कि अब कालीचरण यहां न आएगा। परन्तु उनकी आशा पूरी नहीं हुई। मामूली धोती और वही चायना-कोट पहने कालीचरण ने कोठरी में प्रवेश किया और मैले कपड़े में

ंधी गठरी तथा टिन का वक्स कुली के सिर से उतरवाकर रखवा
लिया। उस गठरी में मां द्वारा स्नेह से बेटे को दिया हुआ अचार,
अमावट इत्यादि तरह-तरह की चीजें थी। कालीचरण जानता था
कि उसकी अनुपस्थिति में ऊपर के लड़के उत्सुकतावश उसकी कोठरी
में आते रहते हैं। मां-बाप की दी प्रेम की भेंट उनके हाथ पकड़ाकर
अपमानित हो, यह वह नहीं चाहता था। वे चीजें उसके लिए अमृत
हैं और उनका महत्त्व गांव के गरीब लोग ही जान सकते हैं, शहर
के तिकड़मी छात्र उनका मूल्य क्या समझें! फिर वे चीजें जिन
भावों से रखी हैं उनकी अवज्ञा ये लड़के जरूर करेंगे जो उसके लिए
असह्य होगा। इसलिए उसने कोठरी में ताला लगाना उचित समझा।
जब कहीं जाता तो ताला बन्द करके ही जाता।

उसकी यह नई बात लड़कों को और खटकी। शैलेन ने हंसी
उड़ाई। एक दिन उसने साथियों से कहा, "यार! बात क्या है?
कहां का खज़ाना लाया है कि घड़ी-घड़ी ताला बन्द करता है। कोई
पता तो लगाओ।" सभीने उत्सुकता प्रकट की।

कालीचरण का ताला मामूली था और अन्य चाबियों से खुल
सकता था। एक दिन शाम को जब कालीचरण ट्यूशन पर चला
गया तो ताला खोलकर दो-तीन लड़के उत्सुकतावश उसके कमरे में
लालटेन लेकर घुस गए। सब चीजें उलट-पलटकर देखीं। खोजते-
खोजते तकिये के नीचे एक चाबी दिखाई पड़ी। उससे टिन का सन्दूक
खोला गया पर उसमें भी मैले कपड़े, कापियां, कंघी इत्यादि मामूली
सामान मिला। सन्दूक बन्द करके वे चलने की बात सोच ही रहे थे
कि वक्स के नीचे रूमाल में बंधी हुई कोई चीज दिखाई पड़ी। खोलने
पर उसमें एक पुड़िया निकली और जब पुड़िया खोली गई तो उसमें
से पचास रुपये का एक नोट निकल आया।

अब तो सभी अट्टहास कर उठे। समझ गए कि इसीके लिए
वह बार-बार ताला बन्द करता है। उसकी कंजूस और सन्देह-भरी

प्रकृति पर शैलेन चकित हो गया।

इतने में कालीचरण की आहट-सी लगी। झट सन्दूक वन्द कर और जल्दी से दरवाज़े में ताला लगा सब चलते बने; नोट लेते गए। शैलेन नोट को देखकर खूब हंसा। उसके लिए पचास रुपये कुछ न थे, पर कालीचरण के पास इतने रुपये हो सकने का किसीको विश्वास न था। अब सब यह जानने को उत्सुक हो उठे कि देखें, इस चोरी का ज्ञान होने पर कालीचरण क्या कहता है।

कालीचरण ट्यूशन से थका हुआ, रात को नौ वजे घर लौटा तो उसमें इतनी ताकत न थी कि कमरे की चीज़ों को ध्यान से देखता। सिर में भयंकर दर्द हो रहा था जिससे वह बड़ा परेशान था और अनुभव करता था कि यह दर्द कुछ दिन तक चलेगा।

दूसरे दिन कपड़े निकालने के लिए जब कालीचरण ने बक्स को हाथ लगाया तो देखा कि वह खुला है। उसने समझ लिया कि कदाचित् वह ताला वन्द करना भूल गया होगा। क्योंकि अगर चोर घुसता तो बाहर का ताला ज्यों का त्यों कैसे रहता।

पर सन्दूक खोलकर देखा तो सब सामान अस्त-व्यस्त मिला। एकाएक उसका दिल कांप उठा। रूमाल की खोज की तो देखा कि मां का दिया हुआ वह नोट गायब है। वार-वार एक-एक कपड़े को झटकारा, हर चीज को हटा-हटाकर देखा, परन्तु नोट नहीं मिला। उधर ऊपरवाले लड़के सीढ़ी पर उतरने-चढ़ने के वहाने बार-बार उधर से गुज़रते और कोठरी की तरफ एक नज़र डालते जाते। फिर कालीचरण की दुरवस्था का रोचक वर्णन सुनाकर शैलेन को खुश करते। अट्टहास का फव्वारा भी चलता रहा।

जब कालीचरण को नोट कहीं प्राप्त नहीं हुआ और सिरदर्द बढ़ गया कि चीज़ों को उठाना-धरना भी असंभव हो गया, तो बिछौने पर आकर मुर्दा-सा पड़ रहा। उसकी मां ने न जाने किस तरह और कितने कष्ट उठाकर ये रुपये एकत्र किए

उसे भी अपनी मां के दुःख का इतिहास नहीं मालूम था और तब वह मां के बोझ को बढ़ाता ही रहता था, किन्तु जिस दिन मा ने अपने दुःख में उसे साथी बनाया, उस दिन जैसा गर्व उसने कभी अनुभव नहीं किया। अपने जीवन में सबसे बड़ा सन्देश और आशीर्वाद उसे इसी नोट के रूप में मिला था, पर अपनी मां के अथाह स्नेह-समुद्र के मथन से मिला दुःख का वह अमूल्य उपहार आज चोरी चला गया। उसे लगा कि यह उसके प्रति कोई पैशाचिक अभिशाप है। कोठरी के पास ऊपरवाले लड़कों के आने-जाने की पैरों की धमक सुनाई पड़ रही है। बार-बार और बेमतलब उन लोगों का उतरना-चढ़ना बन्द ही नहीं होता है। ऐसा लगता है जैसे गाव में एक ओर तो आग लगी हो, उसमें सब कुछ भस्म हुआ जा रहा हो और दूसरी ओर उसके पास से कल-कल ध्वनि करती नदी बही चली जा रही हो।

सहसा ऊपर की मंजिल से लड़कों का अट्टहास उसके कान में आया और उसे लगा कि यह चोर का काम नहीं है, हो न हो यही लोग उसे चिढ़ाने और तंग करने के लिए नोट उठा ले गए हैं। चोर चुरा ले जाता तो कदाचित् उसे इतना दुःख न होता। ऐसा जान पड़ा कि जैसे धनगर्वित इन लड़कों ने खुद उसकी मां पर ही प्रहार किया है। इतने दिनों से वह यहां रह रहा है पर कभी ऊपर नहीं गया, किन्तु आज जब उसके शरीर पर फटी बनियाइन है, पैरों में जूते नहीं हैं, मन की उत्तेजना और सिरदर्द से मुंह लाल हो रहा है, तब वह उसी हालत में उठकर जल्दी-जल्दी सीढ़ियां लांघता हुआ ऊपर आ पहुंचा।

आज रविवार है। कालेज जाने की हड़बड़ नहीं, इसलिए सब बाहर बरामदे में बैठे गपशप कर रहे थे। कालीचरण हांफता हुआ वहां पहुंचा और क्रोध-कम्पित कण्ठ से बोला, "मेरा नोट दे दीजिए।"

यदि वह प्रार्थना के स्वर में नम्रतापूर्वक यह बात कहता तो संभव है उसका अच्छा परिणाम होता, किन्तु उसकी उन्मत्त मूर्ति

प्रकृति पर शैलेन चकित हो गया।

इतने में कालीचरण की आहट-सी लगी। झट सन्दूक वन्द कर और जल्दी से दरवाज़े में ताला लगा सब चलते वने; नोट लेते गए। शैलेन नोट को देखकर खूब हंसा। उसके लिए पचास रुपये कुछ न थे, पर कालीचरण के पास इतने रुपये हो सकने का किसीको विश्वास न था। अव सव यह जानने को उत्सुक हो उठे कि देखें, इस चोरी का ज्ञान होने पर कालीचरण क्या कहता है।

कालीचरण ट्यूशन से थका हुआ, रात को नौ वजे घर लौटा तो उसमें इतनी ताकत न थी कि कमरे की चीज़ों को ध्यान से देखता। सिर में भयंकर दर्द हो रहा था जिससे वह वड़ा परेशान था और अनुभव करता था कि यह दर्द कुछ दिन तक चलेगा।

दूसरे दिन कपड़े निकालने के लिए जव कालीचरण ने वक्स को हाथ लगाया तो देखा कि वह खुला है। उसने समझ लिया कि चित् वह ताला वन्द करना भूल गया होगा। क्योंकि अगर चोर तो वाहर का ताला ज्यों का त्यों कैसे रहता।

पर सन्दूक खोलकर देखा तो सव सामान अस्त-व्यस्त मिला। एकाएक उसका दिल कांप उठा। रूमाल की खोज की तो देखा कि मां का दिया हुआ वह नोट गायव है। वार-वार एक-एक कपड़े को झटकारा, हर चीज़ को हटा-हटाकर देखा, परन्तु नोट नहीं मिला। उधर ऊपरवाले लड़के सीढ़ी पर उतरने-चढ़ने के वहाने वार-वार उधर से गुज़रते और कोठरी की तरफ एक नज़र डालते जाते। फिर कालीचरण की दुरवस्था का रोचक वर्णन सुनाकर शैलेन को खुश करते। अट्टहास का फव्वारा भी चलता रहा।

जव कालीचरण को नोट कहीं प्राप्त नहीं हुआ और सिरदर्द इतना वढ़ गया कि चीज़ों को उठाना-धरना भी असंभव हो गया, तव वह विछौने पर आकर मुर्दा-सा पड़ रहा। उसकी मां ने न जाने किस-किस तरह और कितने कष्ट उठाकर ये रुपये एकत्र किए होंगे। पहले

उसे भी अपनी मां के दुख का इतिहास नहीं मालूम था और तब वह मां के बोझ को बढ़ाता ही रहता था, किन्तु जिस दिन मां ने अपने दुःख मे उसे साथी बनाया, उस दिन जैसा गर्व उसने कभी अनुभव नहीं किया। अपने जीवन में सबसे बड़ा सदेश और आशीर्वाद उसे इसी नोट के रूप में मिला था, पर अपनी मां के अथाह स्नेह-समुद्र के मंथन से मिला दुख का वह अमूल्य उपहार आज चोरी चला गया। उसे लगा कि यह उसके प्रति कोई पैशाचिक अभिशाप है। कोठरी के पास ऊपरवाले लड़कों के आने-जाने की पैरों की धमक सुनाई पड़ रही है। बार-बार और बेमतलब उन लोगों का उतरना-चढ़ना बन्द ही नहीं होता है। ऐसा लगता है जैसे गांव में एक ओर तो आग लगी हो, उसमें सब कुछ भस्म हुआ जा रहा हो और दूसरी ओर उसके पास से कल-कल ध्वनि करती नदी बही चली जा रही हो।

सहसा ऊपर की मंजिल से लड़को का अट्टहास उसके कान मे आया और उसे लगा कि यह चोर का काम नहीं है, हो न हो यही लोग उसे चिढ़ाने और तंग करने के लिए नोट उडा ले गए हैं। चोर चुरा ले जाता तो कदाचित् उसे इतना दुःख न होता। ऐसा जान पड़ा कि जैसे धनगर्वित इन लड़को ने खुद उसकी मा पर ही प्रहार किया है। इतने दिनो से वह यहां रह रहा है पर कभी ऊपर नहीं गया, किन्तु आज जब उसके शरीर पर फटी बनियाइन है, पैरो मे जूते नहीं हैं, मन की उत्तेजना और सिरदर्द से मुंह लाल हो रहा है, तब वह उसी हालत मे उठकर जल्दी-जल्दी सीढ़ियां लांघता हुआ ऊपर जा पहुंचा।

आज रविवार है। कालेज जाने की धड़फड़ नहीं, इसलिए सब बाहर बरामदे में बैठे गपशप कर रहे थे। [illegible] हुआ वहां पहुंचा और क्रोध-कम्पित कण्ठ से बोला, "मेरा नोट दे दीजिए।"

यदि वह प्रार्थना के स्वर में नम्रतापूर्वक यह बात कहता तो संभव है उसका अच्छा परिणाम होता, किन्तु उसकी [illegible]

देखकर शैलेन तेज़ हो पड़ा। यदि दरवान वहां होता तो उसके द्वारा इस असभ्य को वह कान पकड़कर निकलवा देता। शैलेन का रुख देखकर सब एकसाथ बोले, "क्या कहा आपने? कैसा नोट?"

कालीचरण बोला, "मेरे सन्दूक से आप लोग नोट ले आए हैं।"

"छोटे मुंह बड़ी बात। हमें चोर बना रहा है?"

कालीचरण के हाथ में अगर कोई चीज़ होती तो वह खून कर बैठता। उसका रंग-ढंग देख चार-पांच ने मिलकर उसे पकड़ लिया। इस अन्याय को दूर करने की कोई शक्ति उसके पास नहीं। जो सुनेगा उसीको उद्दंड और संशयी बताएगा। जिन लोगों ने उसे मृत्यु-वाण मारा था वे उसकी उद्दंडता को असह्य कह शोरगुल मचाने लगे।

किसीको पता नहीं कि कालीचरण की यह रात किस प्रकार बीती। शैलेन ने सौ रुपये का नोट निकालकर कहा, "जाओ उस गंवार को दे आओ।"

"वाह! यह भी खूब रही! पहले ज़रा उसका तेज तो कम होने दो। पहले वह हम लोगों से लिखित क्षमा मांगे तब फिर देखेंगे।"

अन्त में सब सोने चले गए।

दूसरे दिन सुबह तक कालीचरण की बात लोग भूल गए। पर सीढ़ी से उतरते हुए किसीने नीचे की कोठरी में सुना कि कोई बात-चीत कर रहा है। सोचा, 'शायद वकील से सलाह कर रहा होगा।' दरवाज़ा अन्दर से बन्द था। कान लगाकर सुना, 'अरे यह तो वकील से सलाह नहीं हो रही है, वह असम्बद्ध प्रलाप कर रहा है।'

उसने ऊपर जाकर शैलेन को बताया। शैलेन उतरकर दरवाज़े पर आया। सुना, कालीचरण न जाने क्या-क्या बक रहा है और रह-रहकर 'बापू, बापू' चिल्ला उठता है।

शैलेन डरा कि कहीं नोट के शोक में वह पागल तो नहीं हो गया। बाहर से कई बार पुकार लगाई गई परन्तु कोई जवाब न मिला। हां, बड़बड़ाहट सुनाई देने लगी। शैलेन ने ज़ोर से पुकारकर

कहा, "काली बाबू, दरवाजा खोलिए, आपका नोट मिल गया है।"

किन्तु दरवाजा नहीं खुला; बड़बड़ाहट जारी रही।

शैलेन ने कभी सोचा भी न था कि मामला इतना तूल पकड़ लेगा। साथियों से कुछ न कह सका परन्तु मन ही मन घोर पश्चात्ताप होने लगा। बोला, "दरवाजा तोड़ो।" एकाध ने कहा, "दरवाजा ही तोड़ना है तो पुलिस को बुलाकर तोड़ना चाहिए। पागल हो गया है; न जाने क्या कर बैठे?"

शैलेन बोला, "नहीं, नहीं, जल्दी जाकर अपने डाक्टर को बुला लाओ।"

डाक्टर पास रहते थे, जल्दी ही आ गए। दरवाज़े में कान लगाकर सुना और बोले, "यह तो बायी में बक रहा है।" दरवाज़ा तोड़ा गया; लोग भीतर आ गए तो देखा कि कालीचरण ज़मीन पर बेहोश पड़ा है; आखें खुली है और लाल हो रही है, हाथ-पाव पटकता है और न जाने क्या-क्या बकता है।

डाक्टर ने अच्छी तरह परीक्षा करने के बाद शैलेन से पूछा, "इसके घर का कोई है यहा?"

शैलेन का चेहरा फक हो गया, उसने सहमकर पूछा, "क्यों? क्या बात है?"

डाक्टर गम्भीर होकर बोला, "हालत अच्छी नहीं है, खबर दे देना अच्छा होगा।"

शैलेन ने कहा, "इनसे हमारी कोई घनिष्ठता नहीं है। यह भी नहीं मालूम कि घर के कहां रहते हैं। पता लगाऊगा, परन्तु क्या करना चाहिए?"

डाक्टर ने कहा, "तुरन्त किसी खुले कमरे में ले चलना चाहिए और निरन्तर देख-रेख के लिए नर्स का प्रबन्ध होना चाहिए।"

शैलेन कालीचरण को अपने कमरे में ले गया, फिर सबको यह कहकर विदा कर दिया कि भीड़ करना ठीक नहीं। लोगों के हट जाने

पर उसके सिर पर आइसवैग रखा और स्वयं अपने हाथ से हवा करने लगा।

कालीचरण के घरवालों का पता लगाने के लिए फिर उसका सन्दूक खोलना पड़ा। उसमें चिट्ठियों के दो बंडल रखे मिले। एक में मां की, दूसरे में पिता की चिट्ठियां थीं।

इन्हें शैलेन उठा लाया, दरवाज़ा बन्द कर दिया और रोगी के पास बैठकर पढ़ने लगा। चिट्ठियों से उसके घर का पता मालूम होते ही वह चौंक पड़ा। ज्ञानवाड़ी, चौधरियों की हवेली, भवानी-चरण चौधरी !

उसने चिट्ठियां रख दीं और एकटक कुछ देर कालीचरण के मुंह की ओर देखता रह गया। कुछ दिन पहले किसी साथी ने उससे कहा था, 'तुम्हारे मुंह से कालीचरण का मुंह मिलता है।' उस समय यह बात उसे अच्छी नहीं लगी थी, किन्तु आज उसने समझ लिया कि बात निराधार नहीं थी। उसे ज्ञात था कि उसके बाबा दो भाई थे—श्यामाचरण और भवानीचरण। भवानीचरण के कोई लड़का कालीचरण है, यह उसे नहीं मालूम था। तो यह कालीचरण उसका काका है !

तब शैलेन्द्र को पुरानी बातें याद आने लगीं। जब उसकी दादी जीवित थीं तो बड़े स्नेहपूर्वक भवानीचरण की बातें किया करती थीं; बात करते-करते उनकी आंखों से आंसू आ जाते थे। यद्यपि भवानी-चरण उनके देवर लगते थे, परन्तु उम्र में लड़के से भी छोटा होने के कारण उन्होंने उन्हें अपने बच्चे की तरह ही पाला-पोसा था। जायदाद के झगड़े के कारण जब परिवार के दो टुकड़े हो गए तब भी भवानीचरण का हाल-चाल जानने के लिए उनका हृदय प्यासा रहता था। वे अपने लड़कों से कहती थीं, 'बेचारा भवानी बिलकुल भोला है, तुम लोगों ने उसे जरूर ठगा होगा। मेरे ससुर उसपर जान देते थे, इसलिए उसको इस हालत में छोड़ गए होंगे, इसपर मैं विश्वास

नहीं कर सकती।" शैलेन को याद आया कि भवानीचरण का पक्ष लेने के कारण वह भी दादी पर कई बार क्रुद्ध हुआ है। उन्हीं भवानीचरण की आज ऐसी दशा है। कालीचरण की हालत देखकर सब कुछ उसकी समझ में आ गया। इतने प्रलोभन देने पर भी कालीचरण उसकी मण्डली में शामिल नहीं हुआ। कहीं कालीचरण ने वैसा किया होता, तो आज उसे कितना लज्जित होना पड़ता!

शैलेन की मण्डली बराबर कालीचरण को सताती और उसका तिरस्कार करती रहती है इसलिए शैलेन अपने काका को वहां नहीं रख सका। डाक्टर की सलाह से एक अच्छा मकान लेकर उसमें रखा और बाबा को भी खबर कर दी।

शैलेन का पत्र पाते ही भवानीचरण कलकत्ता दौड़े आए। आते समय रासमणि ने बचा-बचाया सब धन पति को सौंपते हुए कहा, "देखना, किसी तरह की त्रुटि न हो। ज्यादा गड़बड़ देखना तो मुझे तुरन्त खबर देना, मैं भी आ जाऊंगी।" हाथ जोड़कर रक्षा काली की पूजा मानी और गृहाचार्य को बुलाकर शान्ति-पाठ आरम्भ करा दिया।

कालीचरण की दशा देखकर भवानीचरण सकते में आ गए। अभी तक उसे पूरा होश नहीं हुआ था। उसने उन्हें 'मास्टर-साहब' कहकर पुकारा, जिससे उनकी छाती फटने लगी। बीच-बीच में 'बापू' 'बापू' भी पुकार उठता, तब भवानीचरण उसका हाथ पकड़ मुंह के पास करके कहते, 'बेटा, मैं तेरे पास ही तो बैठा हूं।" किन्तु बेटा बाप को पहचानने में असमर्थ ही रहता।

डाक्टर ने आकर देखा और बताया कि ज्वर कुछ कम है, अब शायद तबीयत में कुछ सुधार होगा। भवानीचरण इस बात की कल्पना ही न कर सकते थे कि कालीचरण स्वस्थ न होगा। उसके जन्म से ही वे मानते आए हैं कि बड़ा होकर वह हमारे वंश का उद्धार

करेगा। उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि कालीचरण का अस्तित्व कोई मिटा नहीं सकता। इसीलिए डाक्टर थोड़ा अच्छा बताता तो उन्हें उसमें 'बहुत अच्छा' की ध्वनि सुनाई पड़ती और रासमणि को लिखे, उनके पत्रों में किसी प्रकार की आशंका की कोई बात न होती।

शैलेन्द्र के शिष्ट व्यवहार से भवानीचरण को आश्चर्य होता था। वह उसका अत्यन्त अपना-सा हो गया था। कलकत्ता का सभ्य लड़का है पर उनपर कितनी श्रद्धा दिखाता है! सोचा, 'यहां के लड़कों का स्वभाव ही शायद ऐसा होता होगा।' मन में कहते, 'इनमें शिष्टता न होगी तो किनमें होगी! गांव के लड़कों से, जिनमें न शिक्षा है, न सभ्यता, इनकी क्या तुलना की जा सकती है!'

अब कालीचरण का ज्वर कुछ-कुछ घटने लगा था। कभी-कभी कुछ होश भी आ जाता। पिता को चारपाई के पास देख वह चौंका। सोचा, 'मैं कलकत्ता में कैसे गुजर करता रहा हूं; अब यह सब इनसे कैसे छिपा रहेगा?' उसे सबसे ज्यादा चिन्ता यह होने लगी कि ये लड़के कहीं पिता का उपहास न कर दें। उसने इधर-उधर देखा और समझ न पाया कि वह कहां लेटा है। उसे मालूम पड़ा, जैसे वह सपना देख रहा है।

ज्यादा सोचने-विचारने की शक्ति अभी उसमें नहीं आई थी। दिमाग पर बहुत जोर देकर उसने सोचा कि हो न हो, उसकी बीमारी की खबर सुनकर पिता कलकत्ता दौड़ आए हैं और गन्दी जगह से यहां लाकर रखा है। कैसे लाए, रुपये कहां से जुटाए होंगे और बाद में कर्ज कैसे चुकेगा, ये सब बातें सोचने में वह असमर्थ था। हां, एक बात अवश्य सोचता था कि चाहे जैसे उसे जिन्दा रहना है।

उस समय भवानीचरण कमरे में नहीं थे। शैलेन एक तश्तरी में थोड़े फल लिए कालीचरण के पास आया और तश्तरी को टेबल पर रखकर प्रणाम किया, फिर बोला, "मुझसे बड़ा अपराध हुआ है, क्षमा कर दीजिए।"

कालीचरण पहले तो घबराया, परन्तु शैलेन का मुख का भाव देखकर समझ गया कि इसमें कोई कपट की बात नहीं है। पहले-पहल जब उसने मेस में शैलेन के यौवनोद्दीप्त गौर मुख को देखा था तब उसका मन उसकी ओर खिंचा था, किन्तु अपनी दीनता की लज्जा के कारण उसके पास नहीं गया। यदि अपनी हैसियत भी शैलेन जैसी होती तो मित्र के रूप में उसे पाकर प्रसन्नता ही होती। किन्तु इतने निकट रहकर भी बीच की दीवार को लांघने का कोई उपाय न था। परन्तु आज जब शैलेन फलों की तश्तरी लिए उसकी शय्या के पास आ खड़ा हुआ तब गहरी सांस लेकर उसने उसके सुन्दर मुखड़े की ओर देखा। क्षमा के शब्द तो उसके मुंह से नहीं निकले परन्तु धीरे-धीरे फल उठाकर खाने लगा, मानो जो कुछ कहना था इसी रूप में कह दिया।

वह प्रतिदिन आश्चर्यपूर्वक देखता कि उसके पिता के साथ शैलेन की बड़ी घनिष्ठता हो गई है और शैलेन उन्हें बाबा कहता है। उसने दादी के हाथ की बनी अमावट, अचार इत्यादि चुराकर खाने की बात भी कह सुनाई। शैलेन की इस स्वीकृति से कालीचरण पुलकित हो गया। यदि सरकार कद्र करे तो वह अपनी मां के हाथ की चीजें सबको बुलाकर खिला सकता है। वह रोग-शय्या कालीचरण के लिए *आनन्द-गोष्ठी-सी हो गई, ऐसे सुख के क्षण उसके जीवन में शायद ही कभी आए होंगे। वह सोचता, 'यदि मां यहां उपस्थित होती तो* वह इस कौतुकी युवक को कितना प्यार करती!'

केवल एक बात ऐसी थी जिसकी चर्चा इस आनन्द के प्रवाह में कभी-कभी बाधक हो उठती थी। कालीचरण के मन में अपनी गरीबी के लिए एक अभिमान था। इस बात का गर्व करने में उसे शर्म आती थी कि कभी उसका घराना ऐश्वर्यमान था। 'हम गरीब हैं' इस बात को वह किसी भी किन्तु-परन्तु से ढकने को तैयार नहीं है। उधर भवानीचरण जब उन दिनों का जिक्र करते तो घुम-फि[illegible]समें

हुंचने के चन्द घण्टे बाद ही सब खेल खत्म करके चला गया। वहांशा
में वह 'मां, मां' पुकारता रहा, उसकी वह पुकार मां की छाती में
सदा के लिए विंधी रह गई। परन्तु इस भय से कि बेटे के विना
भवानीचरण कैसे जीवित रहेंगे, उन्होंने अपने दुःख-शोक को प्रकट
नहीं होने दिया। उनका पुत्र मानो आकर उनके पति में ही समा
गया है, यह समझकर उन्होंने पति की एकान्त सेवा का बोझ अपने
गहरी चोट खाए हृदय पर उठा लिया। प्राणों ने कहा, 'अब नहीं
सहा जाता!' फिर भी उन्हें सहना पड़ा।

रात काफी बीत चुकी थी। गहरे शोक से चूर होकर रासमणि
को कुछ देर के लिए तन्द्रा-सी आ गई थी, परन्तु भवानीचरण को
किसी तरह नींद न आई। कुछ देर तक करवटें लेते रहे, परन्तु अन्त
में एक गहरी सांस लेकर 'दयामय भगवान' कहते उठ गए। गांव की
पाठशाला में पढ़ने के दिनों में कालीचरण कोने वाले कमरे में पढ़ा
करता था। भवानीचरण अपने कंपित कर में दीपक लिए वहीं गए।
रासमणि की बनाई गद्दी तख्त पर बिछी है और उसपर जगह-जगह
स्याही के दाग पड़े हुए हैं; धुंधली दीवार पर कोयले से खिंची ज्यामिति
की रेखाएं वैसी ही हैं और तख्त के एक तरफ़ बादामी कापियों
साथ रायल रीडर के कुछ फटे-फुटे पृष्ठ भी पड़े हुए हैं। उसके ब
पन के नन्हे पांव की एक चप्पल घर के एक कोने में पड़ी हुई है
सदा की उपेक्षित यह एक चप्पल ही आज संसार की एक बड़ी
बड़ी नियामत के रूप में दिखाई पड़ी।

टिन के सन्दूक पर दीपक रख भवानीचरण उसी तख्त पर
गए। सूखी आंखों में आंसू तो न आए पर छाती के भीतर न
कैसा होने लगा कि सांस लेने में उनकी पसलियां फटने लगीं।
नहीं रहा गया तो पूर्व ओर की खिड़की खोलकर उसकी एक
को पकड़े अंधेरे में बाहर की ओर देखने लगे।

अंधेरी रात, रिमझिम पानी बरस रहा है, सामने की चारदीवारी से घिरा घना उपवन है। पढ़ने के कमरे में सामने ही कालीचरण ने ...ी जमीन खोद-खादकर बगीचा लगाने की चेष्टा की थी। अब भी उसके हाथ की एक बेल खूब फैल रही है और उसपर अगणित फल मिल रहे हैं।

उस बच्चे के इस बगीचे को देखते ही भवानीचरण के प्राण कंठ तक आ गए। अब उनके जीवन में कोई आशा नहीं। पूजा की छुट्टियां अब भी आएंगी, परन्तु जिसके बिना उनका अकिंचन गृह सूना हो गया है, वह अब कभी न आएगा, किसी छुट्टी में घर न लौटेगा।

'हाय, मेरे बच्चे' कहकर और सिर पकड़कर वे वहीं जमीन पर बैठ गए। कालीचरण माता-पिता की गरीबी दूर करने कलकत्ता गया था; पर हाय री किस्मत, उन्हें इस संसार में बिलकुल गरीब और बेबस छोड़कर चला गया।

बाहर वर्षा और जोर से होने लगी।

इसी समय अंधेरे में कुछ खुरखुराहट हुई, किसीके पैरों की ध्वनि आई। भवानीचरण का हृदय धड़कने लगा। किसी रूप में भी जिसकी आशा नहीं की जा सकती, उसकी ही आशा उठ रही है। ऐसा लगा मानो कालीचरण अपना बगीचा देखने आया हो। 'इतनी वर्षा में वह भीग जाएगा।' मन की इस बेकली के बीच उन्होंने देखा कि क्षण-भर के लिए कोई खिड़की के सामने आकर खड़ा हो गया है, शरीर सफेद चद्दर से ढका है, अंधेरे में मुंह ठीक दिखाई नहीं देता है, पर कद से कालीचरण ही लगता है।

भवानीचरण 'आ गया बेटा' कहते हुए झपटकर दरवाजे की ओर बढ़े और दरवाजा खोलकर वहां पहुंच गए। पर देखा, वहां कोई नहीं है। सारे बगीचे को छान आए पर कहीं कोई नहीं मिला। गहरी रात के गहरे अंधेरे में उन्होंने रुंधे गले से पुकारा, "बेटा काली...

पहुंचने के चन्द घण्टे बाद ही सब खेल खत्म करके चला गया। बेहोशी में वह 'मां, मां' पुकारता रहा, उसकी वह पुकार मां की छाती में सदा के लिए विंधी रह गई। परन्तु इस भय से कि बेटे के विना भवानीचरण कैसे जीवित रहेंगे, उन्होंने अपने दुःख-शोक को प्रकट नहीं होने दिया। उनका पुत्र मानो आकर उनके पति में ही समा गया है, यह समझकर उन्होंने पति की एकान्त सेवा का बोझ अपने गहरी चोट खाए हृदय पर उठा लिया। प्राणों ने कहा, 'अब नहीं सहा जाता !' फिर भी उन्हें सहना पड़ा।

रात काफी बीत चुकी थी। गहरे शोक से चूर होकर रासमणि को कुछ देर के लिए तन्द्रा-सी आ गई थी, परन्तु भवानीचरण को किसी तरह नींद न आई। कुछ देर तक करवटें लेते रहे, परन्तु अन्त में एक गहरी सांस लेकर 'दयामय भगवान' कहते उठ गए। गांव की पाठशाला में पढ़ने के दिनों में कालीचरण कोने वाले कमरे में पढ़ा करता था। भवानीचरण अपने कंपित कर में दीपक लिए वहीं गए। रासमणि की बनाई गद्दी तख्त पर बिछी है और उसपर जगह-जगह स्याही के दाग पड़े हुए हैं; धुंधली दीवार पर कोयले से खिंची ज्यामिति की रेखाएं वैसी ही हैं और तख्त के एक तरफ बादामी कापियों के साथ रायल रीडर के कुछ फटे-फुटे पृष्ठ भी पड़े हुए हैं। उसके बच-पन के नन्हे पांव की एक चप्पल घर के एक कोने में पड़ी हुई है। सदा की उपेक्षित यह एक चप्पल ही आज संसार की एक बड़ी से बड़ी नियामत के रूप में दिखाई पड़ी।

टिन के सन्दूक पर दीपक रख भवानीचरण उसी तख्त पर बैठ गए। सूखी आंखों में आंसू तो न आए पर छाती के भीतर न जाने कैसा होने लगा कि सांस लेने में उनकी पसलियां फटने लगीं। बैठे नहीं रहा गया तो पूर्व ओर की खिड़की खोलकर उसकी एक ... को पकड़े अंधेरे में बाहर की ओर देखने लगे।

अंधेरी रात, रिमझिम पानी बरस रहा है, सामने की चारदीवारी ा घिरा घना उपवन है। पढ़ने के कमरे मे सामने ही कालीचरण ने ोटी जमीन खोद-खादकर बगीचा लगाने की चेष्टा की थी। अब ी उसके हाथ की एक बेल खूब फैल रही है और उसपर अगणित ल मिल रहे हैं।

इस बच्चे के इस बगीचे को देखते ही भवानीचरण के प्राण कंठ क आ गए। अब उनके जीवन में कोई आशा नहीं। पूजा की ुट्टियां अब भी आएगी, परन्तु जिसके बिना उनका अकिंचन गृह ूना हो गया है, वह अब कभी न आएगा, किसी छुट्टी में घर न लौटेगा।

'हाय, मेरे बच्चे' कहकर और सिर पकड़कर वे वहीं जमीन पर बैठ गए। कालीचरण माता-पिता की गरीबी दूर करने कलकत्ता गया था; पर हाय री किस्मत, उन्हें इस संसार में बिलकुल गरीब और बेबस छोड़कर चला गया।

बाहर वर्षा और जोर से होने लगी।

इसी समय अंधेरे में कुछ खुरखुराहट हुई, किसीके पैरों की ध्वनि आई। भवानीचरण का हृदय धड़कने लगा। किसी रूप मे भी जिसकी आशा नहीं की जा सकती, उसकी ही आशा उठ रही है। ऐसा लगा मानो कालीचरण अपना बगीचा देखने आया हो। 'इतनी वर्षा में वह भीग जाएगा।' मन की इस बेकली के बीच उन्होंने देखा कि क्षण-भर के लिए कोई खिड़की के सामने आकर खड़ा हो गया है, शरीर सफेद चद्दर से ढका है, अंधेरे में मुंह ठीक दिखाई नहीं देता है, पर कद से कालीचरण ही लगता है।

भवानीचरण 'आ गया बेटा' कहते हुए झपटकर दरवाजे की ओर बढ़े और दरवाजा खोलकर वहां पहुंच गए। पर देखा, वहां कोई नहीं है। सारे बगीचे को छान आए पर कहीं कोई नहीं मिला। गहरी रात के गहरे अंधेरे में उन्होंने रुंधे गले से पुकारा, "बेटा कालीचरण!"

पर कोई उत्तर नहीं मिला। हां, उनकी पुकार सुनकर नटवर नौकर दौड़ता आया और उन्हें पकड़कर अन्दर ले गया।

दूसरे दिन सुबह जब नटवर उस कमरे में झाड़ू लगाने गया तो देखा कि खिड़की के सामने एक पोटली पड़ी है। ले जाकर भवानी-चरण को दे दी। भवानीचरण ने खोलकर देखा कि कुछ पुराने कागज़ हैं। चश्मा लगाकर पढ़ते ही दौड़कर रासमणि के पास पहुंचे।

उनके हाथ से कागज़ लेकर रासमणि ने पूछा, "क्या है?"

भवानीचरण बोले, "वही पुराना वसीयतनामा।"

रासमणि ने पूछा, "किसने दिया?"

भवानीचरण ने कहा, "कल रात में कालीचरण आया था, वही दे गया है।"

रासमणि ने कहा, "अब इसका क्या होगा?"

भवानीचरण बोले, "हां, अब तो कोई आवश्यकता नहीं।" और पत्नी के हाथ से लेकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

गांव में खबर फैल गई। बगलाचरण ने गर्व से सिर ऊंचा करके कहा, "देखा, मैंने पहले ही कह दिया था कि वसीयतनामे का उद्धार कालीचरण के ही हाथों होगा।"

मोदी रामचरण बोला, "लेकिन कल रात की गाड़ी से एक गोरा लड़का आया था, उसने मेरी दूकान पर आकर मुझसे चौधरी-वाड़ी का पता पूछा था; मैंने रास्ता बता दिया था। उसके हाथ में कपड़े से बंधी एक पोटली थी।"

"फिजूल बकता है।" कहकर बगलाचरण ने उसकी बात उड़ा दी।

घाट की बात

पत्थर पर यदि ये घटनाएं लिखी रहतीं, तो कितने ही दिनों की कितनी ही बातें तुम मेरी हर सीढ़ी पर पढ़ सकते। पुरानी बातें अगर सुनना चाहते हो तो मेरी इन सीढ़ियों पर बैठ जाओ। मन लगाकर पानी की लहरों की ओर कान लगाए रहो। अतीत काल की कितनी ही भूली हुई बातें सुनाई देंगी।

मुझे और एक दिन की बात याद आ रही है। वह भी ठीक आज का सा ही दिन था। आश्विन के आने में दो ही चार दिन बाकी थे। सवेरे के वक्त नवीन शीत ऋतु की धीमी-धीमी हवा सोकर उठे हुओं की देह में नया जीवन ला रही थी। पेड़ों के पत्तों को जरा-जरा सुरसुरी-सी आ रही थी।

गंगा ऊपर तक भरी हुई है, मेरी सिर्फ चार सीढ़ियां पानी के ऊपर जाग रही हैं। जल के साथ स्थल की गलबहियां हो रही हैं। किनारे पर आम के बाग के नीचे जहां अब अरुई का जंगल जम गया है वहां तक गंगा का पानी आ पहुंचा है। नदी के उस मुहाने के पास तीन पुराने पजाए पानी के भीतर उभरे हुए हैं। धीवरों की जो नावें किनारे पर बबूल के पेड़ों से बंधी थीं वे सवेरे की ज्वार के पानी पर तैरती हुई डगमग-डगमग कर रही हैं, चपल यौवन ज्वार का पानी इतरा-इतराकर उनके दोनों तरफ छुप-छुपकर आघात कर रहा है, मधुर परिहास से मानो वह उनके कान पकड़कर हिला-हिला जाता है।

भरी गंगा के ऊपर शरत्-प्रभात की जो धूप पड़ी है उसका रंग कच्चे सोने जैसा, चम्पा के फूल के समान। धूप का ऐसा रंग और किसी भी समय नहीं दिखाई देता। बीच की रेती पर उगी हुई लम्बी-लम्बी कांस पर धूप पड़ रही है। अभी तक कांस के फूल सब खिले नहीं हैं, खिलने शुरू ही हुए हैं।

राम-राम कहते हुए मल्लाहों ने नावें खोल दीं। सूर्य-लोक में चिड़ियां जैसे पर फैलाकर आनन्द से नीले आसमान में उड़ रही हैं, छोटी-छोटी नावें भी ठीक वैसे ही छोटे-छोटे पाल चढ़ाकर सूर्य की किरणों में निकल पड़ी हैं। वे चिड़ियों जैसी ही मालूम देती हैं, मानो राजहंसों की तरह पानी में तैर रही हों और आनन्द में आकर दोनों पर आकाश में फैला दिए हों।

भट्टाचार्यजी ठीक नियमित समय पर पंचपात्र हाथ में लिए स्नान करने आए। स्त्रियां भी एक-एक, दो-दो करके पानी भरने आईं।

यह बहुत ज्यादा दिनों की बात नहीं है। हां, तुम लोगों को बहुत दिनों की जरूर मालूम हो सकती है, पर मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि जैसे कल की बात हो। मेरे दिन तो गंगा के स्रोत के साथ खेलते-खेलते बह जाते हैं, बहुत दिनों से एक जगह पड़ा-पड़ा मैं ऐसा ही देख रहा हूं, इसलिए समय मुझे बहुत लम्बा नहीं मालूम देता। मेरे दिन की धूप और रात की छाया रोज मेरी गंगा पर पड़ती है और रोज उसपर से पुछकर मिट जाती है, कहीं भी उनकी छवि नहीं दिखाई देती। इसीलिए यद्यपि मैं देखने में वृद्ध-सा लगता हूं, पर, हृदय मेरा हमेशा नया और हरा-भरा रहता है। वर्षों की पुरानी स्मृति की काई के भार से आच्छन्न होकर मेरी सूर्य-किरणें मारी नहीं जातीं। हां, कभी-कभी एक-आध काई का टुकड़ा बहकर आता और देह से लगकर फिर स्रोत में बह जाता है। फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह काई कुछ है ही नहीं। जहां गंगा का स्रोत नहीं पहुंचता वहां मेरे छेदों-दरारों में जो लता या शैवाल या पौधे उत्पन्न

हुए हैं वे ही मेरे पुराने होने के गवाह हैं। उन्हीके पुराने काल को स्नेह-पाश मे बाधकर मैंने उसे हमेशा के लिए श्यामल मधुर और नवीन बना रखा है। गंगा प्रतिदिन मेरे पास से एक-एक सीढी उतरती जा रही है; और मैं भी एक-एक सीढ़ी करके पुराना होता जा रहा हूं।

चक्रवर्ती घराने के वह जो वृद्ध पुरुष स्नान करके रामनामी ओढ़ कांपते हुए माला जपते-जपते घर को लौट रहे हैं, उनकी नानी तब इतनी-सी थी। मुझे याद है, उसका एक खेल था,—वह रोज घीकुवांर का एक पत्ता गंगा मे बहा जाती थी। मेरी दाहिनी बाहु के पास एक भंवर-सा था, वहीं पर उसका वह पत्ता लगातार घूमा करता था, और वह गागर रखकर खडी-खड़ी उसीको देखा करती थी। जब देखा कि कुछ दिन बाद वह लडकी बडी हो गई और अपनी एक लड़की को साथ लेकर पानी भरने आई, उसके बाद वह लडकी भी फिर बडी हो गई और अपनी साथ की लडकियों के ऊपर पानी उछालकर ऊधम मचाने पर वह भी उन्हे डांटती-डपटती और भले-मानसो जैसा आचरण करने की शिक्षा देती, तब मुझे वही घीकुवार की नाव बहाने की बात याद आती और बडा कुतूहल मालूम होता।

जो बात कहना चाहता हूं वह आती ही नही। एक बात उठाता हूं तब तक स्रोत में दूसरी बात बह जाती है। बातें आती हैं, चली जाती हैं, उन्हें थामकर नही रख सकता। एक-एक कहानी उस घीकुवार की नाव की तरह भंवर मे पडकर बिना आराम किए लौट-लौट आती है। इसी तरह आज एक कहानी अपना बोझ लेकर मेरे आसपास घूम-फिर रही है, अब डूबी कि अब डूबी। उस पत्ते की तरह ही वह छोटी-सी है, उसमे ज्यादा कुछ नही है, खेल के दो फूल हैं। उसे डूबते देखकर कोमलहृदय बालिका केवल एक लम्बी सांस खीचकर घर लौट जाएगी।

मन्दिर के पास जहां वह गुसाइयो की गोहाल का बास का घेरा

देख रहे हो, वहां एक वंबूल का पेड़ था। उसके नीचे हफ्ते में एक रोज़ पैंठ लगती थी। तब वहां गुसाइयों का घर-द्वार नहीं बना था। जहां अभी उनका चण्डी-मण्डप है वहां मात्र एक फूस की झोंपड़ी थी।

यह बरगद का पेड़, जो आज मेरी पसलियों में हाथ फैलाकर, विकट और लम्बी कठिन उंगलियों जैसी अपनी जड़ों से मेरे विदीर्ण पाषाण-प्राण को मुट्ठी में दबाए हुए है, यह वृक्ष तब इतना-सा छोटा पौधा था। अपनी हरी-भरी नई पत्तियों को लिए यह सिर उठाकर खड़ा हो रहा था। घाम पड़ने पर इसकी उन पत्तियों की छांह मेरे ऊपर सारे दिन खेला करती, इसकी नई जड़ें बच्चों की उंगलियों की तरह मेरी छाती के आसपास चुलबुलाया करतीं। कोई इसकी एक पत्ती भी तोड़ता तो मुझे पीड़ा होती।

मेरी उमर यद्यपि काफ़ी हो चुकी थी, फिर भी मैं सीधा था। आज मैं पीठ की रीढ़ टूट जाने से अष्टावक्र की तरह टेढ़ा-मेढ़ा हो गया हूं और गहरी त्रिवली रेखाओं की तरह मेरे शरीर पर हज़ारों जगह दरारें पड़ गई हैं, मेरे भीतर दुनिया-भर के मेढक जाड़े के दिनों में लम्बी नींद सोने की तैयारियां कर रहे हैं, पर उन दिनों मेरी ऐसी दशा नहीं थी। सिर्फ मेरी बाईं भुजा में बाहर की तरफ दो ईंटों की कमी थी, उस खोह में एक चिड़िया ने घोंसला बना लिया था। तड़के ही जब वह करवट बदलकर जागती और मछली की पूंछ की तरह अपनी डबल पूंछ को दो-चार बार जल्दी-जल्दी नचाकर सीटी देकर आसमान में उड़ जाती, तब मैं समझ लेता कि कुसुम के घाट पर आने का समय हो गया।

जिस लड़की की बात मैं कह रहा हूं, घाट की और-और लड़कियां उसे कुसुम कहा करती थीं। शायद कुसुम ही उसका नाम था। पानी पर जब कुसुम की छोटी-सी छाया पड़ती, तो मेरे मन में आता कि किसी तरह उस छाया को मैं पकड़ रखूं। उसमें कुछ ऐसी ही मिठास थी। वह जब मेरे ऊपर पैर रखती और उसके दोनों पैरों के छड़े जब

बजने लगते तब मेरी दरारों के घास-पौधे मानो पुलकित हो उठते। कुसुम बहुत ज्यादा खेलती-इतराती हो या हंसी-मसखरी करती हो सो बात नहीं, तो भी ताज्जुब की बात यह थी कि उसकी जितनी भी सखी-सहेलियां थीं, उनमें उस जैसी कोई भी न थी। चंचल लड़कियों का उसके बिना काम ही न चलता था। कोई उसे 'कुसी' कहती तो कोई 'खुसी' और कोई 'राक्षसी'। उसकी मां उसे कुसुमी कहती थी। जब देखो तब कुसुम पानी के किनारे ही बैठी मिलती। पानी के साथ उसके हृदय का मानो कोई गहरा नाता हो। पानी उसे बड़ा अच्छा लगता।

कुछ दिन बाद कुसुम को फिर घाट पर नहीं देखा। भुवना और सुवर्णा घाट पर रोया करतीं। एक दिन सुनने में आया कि उनकी कुसी-खुसी-राक्षसी को कोई ससुराल ले गया है। वहां सब नये आदमी हैं, नया घर-द्वार है, और नया ही रास्ता और घाट है। पानी के कमल को मानो कोई जमीन पर बोने ले गया हो।

धीरे-धीरे मैं कुसुम की बात एक तरह से भूल रहा था। साल-भर बीत गया। घाट की लड़कियां कुसुम की बात भी ऐसी कुछ नहीं छेड़तीं। एक दिन शाम के वक्त बहुत दिनों के परिचित पैरों के स्पर्श से सहसा मैं चौंक उठा। मालूम हुआ, शायद कुसुम के पैर हैं ये। वे ही तो हैं, पर उन पैरों में वह संगीत नहीं है। कुसुम के पैरों का स्पर्श और छड़ों की आवाज़ हमेशा से मैं दोनों का एक साथ अनुभव करता आया हूं। आज अचानक उन छड़ों की आवाज न सुनकर संध्या समय का जल कल्लोल कैसा तो उदास-सा सुनाई पड़ने लगा, और आम के बाग में पत्तों को खड़खड़ाती हुई हवा कैसा तो हाहाकार-सा करने लगी।

कुसुम विधवा हो गई है। सुना है, उसका पति परदेश में नौकरी करता था। दो-एक दिन के सिवा पति से उसकी अच्छी तरह भेंट भी न हो पाई थी। चिट्ठी से वैधव्य का समाचार पाकर आठ बरस की उमर में माथे का सिन्दूर पोंछकर, शरीर के गहने

देख रहे हो, वहां एक बबूल का पेड़ था। उसके नीचे हफ्ते में एक रोज़ पेंठ लगती थी। तब वहां गुसाइयों का घर-द्वार नहीं बना था। जहां अभी उनका चण्डी-मण्डप है वहां मात्र एक फूस की झोंपड़ी थी।

यह बरगद का पेड़, जो आज मेरी पसलियों में हाथ फैलाकर, विकट और लम्बी कठिन उंगलियों जैसी अपनी जड़ों से मेरे विदीर्ण पाषाण-प्राण को मुट्ठी में दबाए हुए है, यह वृक्ष तब इतना-सा छोटा पौधा था। अपनी हरी-भरी नई पत्तियों को लिए यह सिर उठाकर खड़ा हो रहा था। घाम पड़ने पर इसकी उन पत्तियों की छांह मेरे ऊपर सारे दिन खेला करती, इसकी नई जड़ें बच्चों की उंगलियों की तरह मेरी छाती के आसपास चुलबुलाया करतीं। कोई इसकी एक पत्ती भी तोड़ता तो मुझे पीड़ा होती।

मेरी उमर यद्यपि काफी हो चुकी थी, फिर भी मैं सीधा था। आज मैं पीठ की रीढ़ टूट जाने से अष्टावक्र की तरह टेढ़ा-मेढ़ा हो गया हूं और गहरी त्रिवली रेखाओं की तरह मेरे शरीर पर हज़ारों जगह दरारें पड़ गई हैं, मेरे भीतर दुनिया-भर के मेढक जाड़े के दिनों में लम्बी नींद सोने की तैयारियां कर रहे हैं, पर उन दिनों मेरी ऐसी दशा नहीं थी। सिर्फ मेरी बाईं भुजा में बाहर की तरफ दो ईंटों की कमी थी, उस खोह में एक चिड़िया ने घोंसला बना लिया था। तड़के ही जब वह करवट बदलकर जागती और मछली की पूंछ की तरह अपनी डबल पूंछ को दो-चार बार जल्दी-जल्दी नचाकर सीटी देकर आसमान में उड़ जाती, तब मैं समझ लेता कि कुसुम के घाट पर आने का समय हो गया।

जिस लड़की की बात मैं कह रहा हूं, घाट की और-और लड़कियां उसे कुसुम कहा करती थीं। शायद कुसुम ही उसका नाम था। पानी पर जब कुसुम की छोटी-सी छाया पड़ती, तो मेरे मन में आता कि किसी तरह उस छाया को मैं पकड़ रखूं। उसमें कुछ ऐसी ही मिठास थी। वह जब मेरे ऊपर पैर रखती और उसके दोनों पैरों के छड़े जब

बजने लगते तब मेरी दरारों के घास-पौधे मानो पुलकित हो उठते। कुसुम बहुत ज्यादा खेलती-इतराती हो या हंसी-मसखरी करती हो सो बात नहीं, तो भी ताज्जुब की बात यह थी कि उसकी जितनी भी सखी-सहेलियां थीं, उनमें उस जैसी कोई भी न थी। चंचल लड़कियों का उसके बिना काम ही न चलता था। कोई उसे 'कुसी' कहती तो कोई 'खुमी' और कोई 'राक्षसी'। उसकी मां उसे कमूमी कहती थी। जब देखो तब कुसुम पानी के किनारे ही बैठी मिलती। पानी के साथ उसके हृदय का मानो कोई गहरा नाता हो। पानी उसे बड़ा अच्छा लगता।

कुछ दिन बाद कुसुम को फिर घाट पर नहीं देखा। भुवना और सुवर्णा घाट पर रोया करती। एक दिन सुनने में आया कि उनकी कुसी-खुमी-राक्षसी को कोई ससुराल ले गया है। वहां सब नये आदमी हैं, नया घर-द्वार है, और नया ही रास्ता और घाट है। पानी के कमल को मानो कोई ज़मीन पर बोने ले गया हो।

धीरे-धीरे मैं कुसुम की बात एक तरह से भूल रहा था। साल-भर बीत गया। घाट की लड़कियां कुसुम की बात भी ऐसी कुछ नहीं छेड़तीं। एक दिन शाम के वक्त बहुत दिनों के परिचित पैरों के स्पर्श से सहसा मैं चौंक उठा। मालूम हुआ, शायद कुसुम के पैर हैं ये। वे ही तो हैं, पर उन पैरों में वह संगीत नहीं है। कुसुम के पैरों का स्पर्श और छड़ों की आवाज हमेशा से मैं दोनों का एक साथ अनुभव करता आया हूं। आज अचानक उन छड़ों की आवाज न सुनकर संध्या समय का जल कल्लोल कैसा तो उदास-सा सुनाई पड़ने लगा, और आम के बाग में पत्तों को खड़खड़ाती हुई हवा कैसा तो हाहाकार-सा करने लगी।

कुसुम विधवा हो गई है। सुना है, उसका पति परदेश में नौकरी करता था। दो-एक दिन के सिवा पति से उसकी अच्छी तरह भेंट भी न हो पाई थी। चिट्ठी से वैधव्य का समाचार पाकर आठ बरस की उमर में माथे का सिन्दूर पोंछकर, शरीर के गहने उतारकर, कुसुम

के एक कोने में न उठती थी। आज तुम जैसे उनके बारे में नहीं सोच सकती कि तुम्हारी दादियां भी सचमुच एक दिन खेलती-फिरती थीं; आज का दिन जैसा सत्य है, जैसा जीता-जागता है, वह दिन भी ऐसा ही सत्य था; तुम्हारी तरह करुण हृदय लेकर सुख में, दुःख में वे भी तुम्हारी ही तरह डगमगाती हुई झूली हैं, वैसे ही आज का यह शरत् का दिन, उनसे रहित, उनके सुख-दुःख की स्मृति के लेश-मात्र से रहित, आज का यह शरद् ऋतु के सूर्य-किरणों का आनन्द-पूर्ण सौन्दर्य उनकी कल्पना के सामने उससे भी अधिक अगोचर था।

उस दिन भोर से ही उत्तर की प्रथम पवन मन्द-मन्द बहती हुई खिले हुए बकुल के फूलों में से एक-आध फूल उड़ाकर मेरे ऊपर फेंक रही थी। मेरे पत्थर पर थोड़ी-थोड़ी ओस की बूंदें पड़ी हुई थीं। उस दिन सवेरे न जाने कहां से सौम्य और उज्ज्वल चेहरे वाला, गोरे बदन और लम्बे कद का एक नवीन सन्यासी आया, और मेरे सामने वाले उन शिव-मन्दिरों में ठहर गया। उस संन्यासी के आने की बात गांव-भर में फैल गई। स्त्रियां अपनी-अपनी गागर रखकर बाबाजी को प्रणाम करने के लिए मन्दिर में जमा होने लगीं।

मन्दिर में भीड़ दिनोंदिन बढ़ने लगी। एक तो सन्यासी, दूसरे अनुपम उनका रूप, और उसपर वे किसीकी अवहेलना नहीं करते। बच्चों को वे गोद में बिठा लेते और माताओं से घर के काम-धन्धों की बातें पूछते। थोड़े ही दिनों में स्त्री-समाज में उनकी बहुत ज्यादा प्रतिष्ठा हो गई, उनमें वे पुजने लगे। उनके पास पुरुष भी बहुत आते। किसी दिन वे 'भागवत' पढ़ते तो किसी दिन 'भगवद्गीता' की व्याख्या करते, किसी दिन मन्दिर में बैठकर तरह-तरह की शास्त्र-चर्चा करते। उसके पास कोई उपदेश सुनने आता तो कोई मन्त्र लेने, और कोई रोग की दवा पूछने। उनके रूप का क्या पूछना! जान पड़ता, मानो साक्षात् महादेव ही मनुष्य का शरीर धरकर अपने मन्दिर में आ विराजे हों।

संन्यासी प्रतिदिन तड़के ही, सूर्योदय से पहले, शुक्रतारा को सामने रखकर गंगा के पानी में गले तक डूबकर धीर-गम्भीर स्वर में संध्या-वन्दन करते, और तब मुझे पानी की तरंगों का कलकल शब्द न सुनाई देता। उनके उस कण्ठ-स्वर को सुनते-सुनते गंगा के पूरब किनारे का आकाश गुलाबी हो उठता, बादलों के किनारे-किनारे अरुण रेखाएं पड़ जातीं, अंधकार मानो खिलने वाली कली की ऊपर की पपड़ी की तरह फटकर चारों तरफ झुक जाता और आकाश-सरोवर पर उषा की लाल आभा थोड़ी-थोड़ी करके निकल आती। मानो यह महापुरुष गंगा के पानी में खड़ा होकर पूरब की ओर दृष्टि किए जिस महामन्त्र को पढ़ता जाता उसके एक-एक शब्द के उच्चारण के साथ-साथ निशीथ रजनी की माया दूर हो जाती, चांद और तारे पश्चिम को उतरते जाते और सूर्य पूर्वाकाश में उदित होता रहता, और इस तरह जगत का दृश्यपट बदल जाता। है कौन यह मायावी! गंगा-स्नान करके संन्यासी जब होम-शिखा के समान अपने लम्बे गोरे पुण्य-शरीर को लिए पानी से निकलता और उसके जटाजूट से पानी झरता रहता नये सूरज की किरणें उसके समस्त अंगों पर पड़कर चमचमाती रहतीं।

इस तरह और भी कई महीने बीत गए। चैत के महीने में सूर्य-ग्रहण के समय हजारों आदमी गंगा नहाने आए। बबूल के पेड़ों के नीचे बड़ी भारी पैंठ लगी। इस मौके पर संन्यासी के दर्शन के लिए भी बहुत-से आदमी आए। जिस गांव में कुसुम की ससुराल थी वहां से भी बहुत-सी औरतें आईं।

सवेरे का समय था। मेरी सीढ़ियों पर बैठे संन्यासी जप कर रहे थे। उन्हें देखते ही अचानक एक स्त्री अपनी साथिन का कंधा मसककर बोल उठी, "अरी ओ, ये तो अपनी कुसुम के पति मालूम होते हैं!"

एक स्त्री अपने घूंघट को ज़रा ऊंचा करके कहने लगी, "अरी, हां री, ये तो हमारे चटर्जियों के घर के छोटे बाबू हैं !" और एक जो थी वह घूंघट का इतना आडम्बर न रखती थी, उसने कहा, "हां री, वैसी ही नाक है, वैसी ही आंखें हैं !" चौथी ने सन्यासी की तरफ बिना देखे ही गहरी सांस लेकर गागर से पानी को धक्का देकर कहा, "हाय, वह अब कहां है ! अब क्या वो कभी आएगा ! कुसुम के ऐसे भाग्य कहां !" तब फिर किसीने कहा, "उनके इतनी दाढ़ी नहीं थी।" कोई बोली, "वे ऐसे दुबले नहीं थे।" कोई कहने लगी, "वे इतने लम्बे कहां थे ?" इस तरह बात का लगभग फैसला-सा हो गया, और चर्चा जहां की तहां दब गई।

गांव के और सबों ने सन्यासी को देखा था, सिर्फ कुसुम ने नहीं देखा। ज्यादा आदमियों का समागम होते रहने से कुसुम ने मेरे पास आना बिलकुल छोड़-सा दिया था। एक दिन सन्ध्या के बाद पूनो का चांद आकाश में उठते देख शायद हम दोनों का पुराना सम्बन्ध उसे याद आ गया।

उस समय घाट पर और कोई नहीं था। झींगुर अपनी 'झीं-झीं' की तान अलाप रहे थे। मन्दिर के घण्टा-घड़ियालों की ध्वनि भी कुछ देर पहले बन्द हो गई थी, उसकी आखिरी गूंज की तरंगें क्षीणतर होकर उस पार के छायामय पेड़ों की तरह विलीन हो गईं। धीरे-धीरे शुभ्र चांदनी से जल-स्थल और आकाश भर गया; मेरी सीढ़ियों पर ज्वार का पानी छपछप करने लगा। कुसुम आई, और मेरे ऊपर अपनी छाया डालकर बैठ गई। हवा थम चुकी है। पेड़-पौधे भी चुप्पी साध गए हैं। कुसुम के सामने है गंगा की छाती पर बेरोक-टोक फैली हुई चांदनी। अंधेरा उसके पीछे, आसपास, पेड़-पत्तियों में, मन्दिर की छाया में, टूटे-फूटे मकानों की भीतों में, तालाब के किनारे और ताड़ के पेड़ों के नीचे अपना मुंह छिपाए दुबककर बैठ गया है। छतिवन के पेड़ों की डालियों पर चमगादड़ लटक रहे हैं। बस्ती के

पास गीदड़ों की जोरों की चीख उठी और थम गई।

संन्यासी धीरे-धीरे मन्दिर के भीतर से वाहर निकल आए। घाट पर आकर दो-एक सीढ़ी उतरते ही उनकी दृष्टि कुसुम पर पड़ी। अकेली स्त्री को ऐसे एकान्त स्थान में वैठी देख वे लौटना ही चाहते थे कि इतने में सहसा कुसुम ने मुंह उठाकर पीछे की ओर देखा।

उसके सिर का कपड़ा पीछे को खिसक गया। खिलते हुए फूल पर जैसे चांदनी पड़ती है, मुंह उठाते ही कुसुम के मुंह पर वैसे ही चांदनी आ पड़ी। उसी क्षण दोनों ने एक-दूसरे को देखा, मानो जान-पहचान हो गई। ऐसा लगा जैसे पहले जन्म की जान-पहचान हो।

सिर के ऊपर से उल्लू वोलता हुआ उड़ गया। उस आवाज़ से चौंककर कुसुम ने होश सम्हाला, सिर का कपड़ा खींच लिया; और उठकर संन्यासी के पैरों के पास जाकर साष्टांग प्रणाम किया।

संन्यासी ने आशीर्वाद देकर पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

"कुसुम।"

उस रात को फिर कोई वात नहीं हुई। कुसुम का घर पास ही था। वह धीरे-धीरे अपने घर चली गई। उस रात को संन्यासी वहुत देर तक मेरी सीढ़ियों पर वैठे रहे। अन्त में पूरव का चांद जव पश्चिम में पहुंच गया, संन्यासी के पीछे की छाया जव सामने आ गई तव वे उठकर मन्दिर में चले गए।

उसके दूसरे दिन से मैं वरावर देखा करता कि कुसुम रोज़ आती और संन्यासी की पदधूलि ले जाती। संन्यासी जव शास्त्र की व्याख्या करते तव वह एक तरफ खड़ी होकर सव सुनती। संन्यासी प्रातः-सन्ध्या कर चुकने के वाद कुसुम को वुलाकर उसे धर्म की वातें सुनाते। सव वातें क्या कुसुम समझ सकती थी ? किन्तु, वह खूव मन लगाकर चुपचाप वैठी-वैठी सव सुना करती। संन्यासी उसे जैसा उपदेश देते, वह हूवहू वैसे ही उसका पालन करती। रोज़मर्रा वह मन्दिर का काम करती, देव-सेवा में ज़रा भी आलस्य नहीं करती, पूजा के लिए

फूल चुनती, गंगा से पानी भरकर मन्दिर धोती।

संन्यासी उसे जितनी भी बातें बताते, मेरी सीढ़ियों पर बैठकर वह उन्हींको सोचा करती। धीरे-धीरे उसकी दृष्टि दूर तक फैलने लगी। उसने अब तक जो देखा नहीं था, अब वह उसे देखने लगी। जो पहले सुना नहीं था, उसे अब वह सुनने लगी। उसके प्रशान्त चेहरे पर जो एक म्लान छाया थी वह दूर हो गई। और, प्रभात-सूर्य के प्रकाश में जब वह भक्तिभाव से सन्यासी के पैरों के पास आकर लोट जाती तब वह देवता पर चढ़ाए हुए ओस से धुले पूजा के फूल के समान दीखती, और एक निर्मल प्रसन्नता उसके समस्त शरीर को प्रकाशमय बना देती।

शीत ऋतु के आखिरी दिन थे। ठण्डी-ठण्डी हवा के साथ किसी-किसी दिन सन्ध्या के समय सहसा दक्षिण से वसन्त की हवा आ मिलती है, और तब आकाश से ओस का भाव बिलकुल दूर हो जाता है। बहुत दिन बाद गांव में बंसी बजने लगी और गीत की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। मल्लाह लोग स्रोत में नाव बहाकर डांड़ खेना बन्द करके श्याम-कन्हैया के गीत गाने लगे। अचानक चिड़ियों ने इस डाली से उस डाली पर फुदक-फुदककर परम उल्लास से उत्तर-प्रत्युत्तर करना शुरू कर दिया। ऋतु अब ऐसी ही आ गई है। वसन्त की हवा लगने से पाषाण हृदय के भीतर भी मानो कुछ-कुछ यौवन का संचार हो उठा। मेरे हृदय के भीतर के उस नवयौवनोच्छ्वास को आकर्षित करके ही मानो मेरी लताएं और घास-पौधे देखते-देखते फूलों से लदे जा रहे हैं। इस समय कुसुम क्यों नहीं दिखाई देती? कुछ दिन से वह मन्दिर में भी नहीं आती, सन्यासी के पास भी उसे नहीं देखता।

इस बीच में क्या हो गया, मैं कुछ समझ न सका।

कुछ दिन बाद, एक दिन सन्ध्या के समय मेरी ही सीढ़ियों पर संन्यासी के साथ कुसुम की भेंट हुई।

कुसुम ने सिर झुकाकर कहा, "प्रभु, आपने मुझे बुलाया था ?"

"हां, तुम दिखाई क्यों नहीं देतीं ? आजकल देव-सेवा में तुम इतनी लापरवाही क्यों कर रही हो ?"

कुसुम चुपचाप खड़ी रही।

"मुझसे तुम अपने मन की बात खोलकर कहो।"

कुसुम ने मुंह फेरकर कहा, "प्रभु, मैं पापिन हूं, इसीलिए ऐसी लापरवाही हो रही है मुझसे।"

संन्यासी ने अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वर में कहा, "कुसुम, तुम्हारे हृदय में अशान्ति पैदा हो गई है—मैं यह समझ रहा हूं।"

कुसुम मानो चौंक उठी। उसने शायद समझा कि संन्यासी ने न जाने कितना समझ लिया होगा! उसकी आंखें धीरे-धीरे डबडबा आईं, वह वहीं पर बैठ गई, और आंचल से मुंह ढककर सीढ़ी पर संन्यासी के पैरों के पास बैठी-बैठी रोने लगी।

संन्यासी ने कुछ पीछे हटकर धीरे से कहा, "अपनी अशान्ति की बात तुम मुझसे साफ-साफ कहो,—मैं तुम्हें शान्ति का मार्ग बताऊंगा।"

कुसुम ने अटल भक्ति के स्वर में कहना शुरू किया, किन्तु बीच-बीच में वह रुक-रुक जाती, कहीं-कहीं बात ही न सूझती। कहने लगी, "आपकी आज्ञा है तो मैं जरूर कहूंगी। पर, अच्छी तरह कह नहीं सकूंगी। आप तो शायद मन ही मन सब कुछ समझ रहे होंगे। प्रभु, मैं एक जने को देवता के समान भक्ति करती थी, मैं उनकी पूजा करती थी। उस आनन्द से मेरा हृदय भर गया था। एक दिन रात को स्पप्न में देखा, मानो वे मेरे हृदय के स्वामी हैं, न जाने कहां एक बकुल-वन में बैठकर अपने बायें हाथ में मेरा दाहिना हाथ लिए मुझे वे प्रेम की बातें सुना रहे हैं। और यह बात मुझे जरा भी असम्भव या आश्चर्य की नहीं मालूम हुई। सपना टूट गया, पर, उसका आवेश नहीं गया। उसके दूसरे दिन जब उन्हें देखा, तो मैं उन्हें पहले जैसा

न देख सकी। मेरे मन में बार-बार उसी सपने की तसवीर नाचने लगी। डर से मैं दूर भाग गई, पर, वह तसवीर मेरे साथ ही साथ रही। तब से मेरे हृदय की अशान्ति दूर नही हो रही है, प्रभो, मेरा सब कुछ अंधकारमय हो गया है।"

कुसुम जब आंसू पोंछती हुई बात कह रही थी, तब मैं अनुभव कर रहा था कि सन्यासी ने अपने दाहिने पैर से मेरा पत्थर जोर से दबा रखा है।

कुसुम की बात खतम होने पर संन्यासी ने कहा, "जिसे तुमने सपने में देखा था वह कौन था, बताओ?"

कुसुम ने हाथ जोड़कर कहा, "सो मैं नही बता सकूंगी।"

संन्यासी ने कहा, "तुम्हारी भलाई के लिए ही पूछ रहा हूं— कौन है वह साफ-साफ बताओ।"

कुसुम ने अपने कोमल ओठों को जोरों से दबाकर, हाथ जोड़कर धीरे से कहा, "बताना ही पड़ेगा?"

संन्यासी ने कहा, "हां, बताना ही पड़ेगा।"

कुसुम उसी क्षण बोल उठी, "तुम्हीं तो हो, प्रभु!"

कुसुम के ये अपने ही शब्द ज्योंही उसके कान मे पड़े त्योंही वह मूर्च्छित होकर मेरी गोद में गिर पड़ी। संन्यासी पत्थर की मूर्ति की तरह खड़े रहे।

बेहोशी दूर होते ही कुसुम उठकर बैठ गई, और तब संन्यासी ने धीरे-धीरे कहा, "तुमने मेरी सभी बातें पालन की है, और भी एक बात पालन करनी होगी। मैं आज ही यहा से जा रहा हूं। मेरे साथ अब तुम्हारी कभी भी भेंट न हो सकेगी। मुझे तुम भूल जाओ। बताओ, इतनी तपस्या तुम करोगी?"

कुसुम उठकर खड़ी हो गई, और सन्यासी के मुह की ओर देख-कर धीर स्वर में बोली, "प्रभो, ऐसा ही होगा।"

सन्यासी ने कहा, "तो मैं जाता हूं।"

कुसुम ने और कुछ न कहके उन्हें प्रणाम किया, और उनके पैरों की धूल सिर से लगाई। संन्यासी चले गए।

कुसुम ने कहा, "वे आज्ञा दे गए हैं, उन्हें भूलना होगा।" कहती हुई वह धीरे-धीरे गंगा के पानी में उतर गई।

वचपन से जिसने इसी पानी के किनारे दिन विताए हैं, श्रान्ति के समय यह पानी ही यदि हाथ वढ़ाकर उसे गोद में न लेगा तो और कौन लेगा ?

चांद अस्त हो गया, रात्रि घोर अंधकारमय हो गई। अकस्मात पानी में एक शब्द-सा सुनाई दिया; और कुछ भी समझ में नहीं आया। अंधकार में हवा सनसनाने लगी। हवा ने शायद यह सोच-कर कि किसीको कुछ दीख न जाए, फूंक मारकर आकाश के तारों को वुझा देना चाहा।

मेरी गोद में जो खेला करती थी वह आज अपना खेल खतम करके मेरी गोद में से चुपके से खिसक गई, और मैं जान भी न पाया।

कंकाल

हम तीनों बचपन के साथी जिस कमरे में सोते थे उसके बगल के कमरे में दीवार पर एक नर-कंकाल टंगा रहता था। रात को हवा से उसकी हड्डियां खड़खड़ाया करती थी। दिन में हमे उन हड्डियों को हिलाना पड़ता था। कारण, हम लोग तब पंडितजी से 'मेघनाद-वध' काव्य और कैम्बेल स्कूल के एक विद्यार्थी से अस्थि-विद्या पढ़ा करते थे। हमारे बुजुर्ग चाहते थे कि हम लोगों को वे एकाएक सर्वविद्या में पारदर्शी कर डालें। उनका वह इरादा कहां तक पूरा हुआ, यह बात जो हमें जानते हैं उनके सामने प्रकट करना फिजूल है, और जो नहीं जानते उनसे छिपा जाना ही अच्छा है।

उसके बाद बहुत समय बीत चुका है। इस बीच में उस घर से कंकाल और हम लोगों के दिमाग से अस्थि-विद्या निकलकर न जाने कहां चली गई, कुछ पता नहीं।

थोड़े दिन हुए, एक दिन रात को, किसी कारण से और कहीं जगह न मिलने से मुझे उसी कमरे में सोना पड़ा जिसमे किसी जमाने में कंकाल था। आदत न होने से नीद नहीं आई। करवट बदलते-बदलते गिरजा की घड़ी मे बड़े-बड़े घण्टे लगभग सभी बज गए। इतने में घर के एक कोने मे जो तेल का दीया जल रहा था व पाचेक मिनट बुत-बुत करके बिलकुल ही बुझ गया। इस पहले हमारे घर दो-एक मौत हो चुकी थी। इसीसे इस

बुझते ही मौत की बात याद आ गई। मालूम हुआ, यह जो आधी रात के वक्त एक दीपशिखा चिरअंधकार में विला गई, प्रकृति के लिए जैसी यह है वैसी ही मनुष्य की छोटी-छोटी प्राणशिखाएं हैं, जो कभी दिन में और कभी रात में सहसा बुझकर हमारी स्मृति से सदा के लिए मिट जाती हैं।

क्रमशः उस कंकाल की बात याद आ गई। उसकी जीवित अवस्था के विषय में कल्पना करते-करते सहसा ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई चेतन पदार्थ अंधकारमय घर में दीवार टटोलता हुआ मेरी मसहरी के चारों तरफ घूम रहा हो। और उसकी घनी-घनी सांस मुझे साफ-साफ सुनाई देने लगी। ऐसा लगा जैसे वह कोई खोई हुई चीज़ ढूंढ़ रहा हो, वह मिल नहीं रही हो और उसके लिए तेज़ी के साथ घर-भर में घूम रहा हो। मैंने निश्चित समझ लिया कि यह सब कुछ मेरे निद्राहीन गरमाए हुए मस्तिष्क की कल्पना है। और मेरे ही में भन्नाता हुआ जो खून दौड़ रहा है वही पैरों की आहट जैसा दे रहा है। किन्तु फिर भी, डर के मारे रोंगटे खड़े हो उठे। फिजूल के डर को ज़बरदस्ती दूर करने के इरादे से मैं बोल उठा, "कौन है ?"

पैरों की आहट मेरी मसहरी के पास आकर थम गई, और एक जवाब सुन पड़ा, "मैं हूं। मेरा वह कंकाल कहां गया—उसे ढूंढ़ने आई हूं।"

मैंने सोचा कि अपनी काल्पनिक सृष्टि के आगे डरना-डराना कुछ मानी नहीं रखता। और, गाव-तकिये से जोर से चिपटकर मैंने चिर-परिचित की तरह सहज स्वर में कहा, "वाह, आधी रात के वक्त काम तो खूब ढूंढ़ निकाला है! अब उस कंकाल से तुम्हें मतलब ?"

अंधेरे में मसहरी के बहुत ही पास आकर उसने कहा, "खूब कहा! अरे, मेरी छाती की हड्डियां तो उसीमें थीं! मेरा छब्बीस वर्ष का यौवन तो उसीके चारों ओर विकसित हुआ था! एक बार देखने

की तबीयत नहीं होती ?"

मैंने उसी वक्त कहा, "हां, बात तो ठीक है। तो तुम ढूंढ़ो, जाओ। मैं ज़रा सोने की कोशिश करूं।"

उसने कहा, "तुम अकेले ही हो क्या ? तो ज़रा बैठ जाऊं। आज ज़रा गप-शप होने दो। आज से पैंतीस साल पहले मैं भी आदमियों के पास बैठकर आदमियों की तरह ही गप-शप किया करती थी। ये पैंतीस साल मैंने सिर्फ श्मशान की हवा में हू-हू करते हुए बिताए हैं। आज तुम्हारे पास बैठकर और एक बार आदमियों की तरह गप-शप कर लूं।"

मुझे ऐसा लगा जैसे वह मसहरी के पास आकर बैठ गई। और कोई चारा न देख मैंने ज़रा उत्साह के साथ ही कहा, "हां, यह ठीक है। ऐसा कोई किस्सा छेड़ो जिससे तबीयत खुश हो जाए।"

उसने कहा, "सबसे बढ़कर मज़े का किस्सा सुनना चाहते हो तो मैं अपनी ज़िन्दगी का किस्सा सुनाती हूं, सुनो।"

गिरजे की घड़ी में टन्-टन् दो बजे। वह कहने लगी, "जब मैं मनुष्य थी और छोटी थी तब एक आदमी से मैं यम की तरह डरती थी। वे थे मेरे पति। मछली को कांटे में फंसा लेने पर वह जैसे फड़फड़ाती है, मैं भी वैसे ही तड़पती थी। मुझे तब ऐसा लगा जैसे कोई एक बिलकुल अपरिचित आदमी स्नेह-जल से भरे मेरे जन्म-जलाशय से मुझे कांटे में फंसाकर खींचे लिए जा रहा हो, किसी तरह उसके हाथ से छुटकारा नहीं मिलने का। ब्याह के दो महीने बाद ही मेरे पति की मृत्यु हो गई। घरवालों और नाते-रिश्तेदारों ने मेरी तरफ से बहुत कुछ शोक-विलाप किया। मेरे ससुर ने बहुत-से लक्षण मिलाकर सास से कहा, 'शास्त्रों में जिसे विषकन्या कहा गया है, मैं वही हूं।' यह बात मुझे अभी तक बिलकुल स्पष्ट याद है।—सुनते हो, कहानी कैसी लग रही है ?"

मैंने कहा, "अच्छी है, कहानी का प्रारम्भ तो बड़े मज़े का है।"

"तो सुनो। आनन्द से मायके लौट आई। क्रमशः उमर बढ़ने लगी। लोग मुझसे छिपाते थे, पर, मैं खूब अच्छी तरह जानती थी कि मुझ जैसी रूपवती जहां-तहां नहीं मिलती।—क्यों तुम्हारी क्या राय है?"

"हो सकता है। लेकिन, मैंने तो तुम्हें कभी देखा नहीं।"

मेरा जवाब सुनते ही वह ठहाका मारकर हंस पड़ी; और फिर कहने लगी, "देखा नहीं! क्यों, मेरा वह कंकाल? हिः हिः हिः हिः, मैं तुमसे मज़ाक कर रही हूं! तुम्हारे सामने मैं कैसे साबित करूं कि मेरी उन आंखों की खोखली हड्डियों के अन्दर कमान-सी खिंची हुई, भौंरा-सी काली, बड़ी-बड़ी दो आंखें थीं, और उन रंगीन ओठों पर जो मीठी-मीठी मुसकान थी उसकी अब इन उघड़े हुए दांतों की विकट हंसी के साथ किसी तरह तुलना ही नहीं हो सकती। मैं कैसे समझाऊं कि इन्हीं इनी-गिनी लम्बी सूखी हड्डियों के ऊपर इतना लालित्य था और यौवन की इतनी कठिन-कोमल सुघड़ परिपूर्णता प्रतिदिन खिलती रहती थी कि तुमसे कहने में मुझे हंसी भी आती है और क्रोध भी। मेरे उस शरीर के कंकाल से अस्थि-विद्या सीखी जा सकती है, यह बात उस ज़माने में बड़े-बड़े डाक्टरों के दिमाग में भी न आती थी। मुझे खूब याद है, एक डाक्टर ने अपने एक खास मित्र से मुझे 'कनक-चम्पा' बताया था। उसके मानी यह थे कि दुनिया के और सब आदमी अस्थि-विद्या और शरीर-तत्त्व के दृष्टान्त बन सकते हैं, किन्तु, मैं ही सिर्फ एक ऐसी हूं कि जिसे खुशबूदार खूबसूरत फूल के सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। कनक-चम्पा के भीतर क्या कोई कंकाल होता है?

"मैं जब चलती तो मुझे ऐसा लगता जैसे हीरे को हिलाने से उसके चारों ओर प्रकाश चमचमाता है, मेरी देह के ज़रा से हिलने-डुलने में वैसी ही सौन्दर्य की चमक मानो अनेक स्वाभाविक हिल्लोलों में चारों ओर बिखरी पड़ती हो। कभी-कभी मैं बहुत देर तक अपने

हाथ देखा करती ; देखती कि संसार के समस्त उद्धत पौरुष के मुंह मे लगाम डालकर मधुरता से उन्हें वश में कर सकते थे, ऐसे हाथ थे वे ! सुभद्रा जब अर्जुन को लेकर बड़े दर्प के साथ अपने विजय-रथ को आश्चर्य चकित तीन लोक के बीच मे होकर चला ले गई थी, तब शायद उनके ऐसी ही दो अस्थूल सडौल भुजाएं, गुलाबी हथेलियां और लावण्य-शिखा के समान उंगलियां थीं !

"किन्तु, हाय, मेरे उस निर्लज्ज निरावरण, निराभरण चिरवृद्ध कंकाल ने तुम्हारे सामने झूठी गवाही दी है मेरी ! तब मैं बेबस थी, कुछ बोल न सकती थी, इसीलिए संसार-भर में मेरा सबसे ज्यादा क्रोध तुम्हीपर है । ऐसी मन मे आती है कि अपने उस सोलह वर्ष के जीवित और यौवन के ताप से उत्तप्त आरक्तिम रूप को एक बार तुम्हारी आखो के सामने रख दू । बहुत दिनों के लिए तुम्हारी आखों की नींद छुडा दूं, तुम्हारी अस्थि-विद्या को अस्थिर करके देश-निकाला दे दू !"

मैंने कहा, "तुम्हारी देह होती तो मैं तुम्हारी देह छूकर कहता कि उस विद्या का लेशमात्र भी अब मेरे मस्तिष्क में नहीं है । तुम्हारा यह भुवन-मोहन पूर्ण यौवन का रूप निशीथ रात्रि के इस अंधकार-पट पर जाज्वल्यमान होकर प्रस्फुटित हो उठा है । बस, अब ज्यादा न कहलाओ ।"

वह कहने लगी, "मेरी कोई सखी-सहेली न थी । भइया ने प्रतिज्ञा कर ली थी कि वे ब्याह न करेंगे । घर मे सिर्फ मैं अकेली थी । बगीचे में पेड़ के नीचे बैठी-बैठी मैं सोचा करती, तमाम दुनिया मुझसे ही प्रेम करती है । आकाश के सारे तारे मुझे ही देखा करते हैं, हवा छल से बार-बार गहरी सांस के रूप में मेरी ही बगल से निकल जाया करती है । जिस घास पर मैं पैर फैलाए बैठी हूं उसमें अगर चेतना होती तो वह भी मुझे पाकर फिर से अचेतन हो जाती । मुझे मालूम होता, संसार के सारे युवक उस घास के रूप में दल बांधकर

चुपचाप मेरे पैरों के पास खड़े हैं। हृदय में विना कारण न जाने कैसी तो एक वेदना-सी अनुभव करती रहती। मेरे भइया के मित्र शशिशेखर जव मेडिकल कालेज की आखिरी परीक्षा पास कर चुके, तो वे ही हमारे घर के डाक्टर हुए। उन्हें मैं पहले ओट में से छिप-कर बहुत वार देख चुकी थी। भइया वड़े अजीव आदमी थे, दुनिया को मानो वे अच्छी तरह देख न सकते थे। दुनिया उनके लिए मानो काफी खुली हुई न थी, इसलिए हटते-हटते वे विलकुल उसके एक किनारे पर जा लगे थे।

"उनके मित्रों में वस एक शशिशेखर ही थे। इसलिए वाहर के युवकों में मैं सिर्फ शशिशेखर को ही हमेशा से देखती आई थी। और, जव मैं शाम के वक्त फूल के पेड़ के नीचे साम्राज्ञी की तरह आसन जमाकर वैठती तव ऐसा लगता जैसे संसार की सम्पूर्ण पुरुष-जाति शशिशेखर की मूर्ति धारण करके मेरे चरणों के पास आकर आश्रय लेना चाहती है।—सुन रहे हो? कहानी कैसी मालूम देती ?"

मैंने एक गहरी सांस लेकर कहा, "मालूम होता है, मैं अगर शशिशेखर होकर पैदा होता तो अच्छा रहता।"

वह कहती गई, "पहले पूरी सुन तो लो। एक दिन की वात है, वदली का दिन था, मुझे वुखार चढ़ा। डाक्टर मुझे देखने भीतर आए। यही पहली मुलाकात थी।

"मैं खिड़की की तरफ मुंह किए लेटी थी, ताकि सूर्यास्त की लाल आभा चेहरे पर पड़े और उसका फीकापन जाता रहे। डाक्टर ने घर में घुसते ही मेरे मुंह की ओर एक वार देखा, और मैंने भी मन ही मन अपने को डाक्टर मानकर कल्पना से अपने मुंह को देखा। शाम के उस गुलावी उजाले में नरम तकिये पर लापरवाही से पड़ा हुआ मेरा वह चेहरा मुझे कुछ मुरझाया हुआ सा कोमल फूल के समान दीख पड़ा, विखरे हुए घुंघराले वाल माथे पर उड़ रहे थे और लज्जा

से झुकी हुई मेरी बड़ी-बड़ी आंखों के पलक गालों पर छाया डाल रहे थे।

"डाक्टर ने नम्रता के साथ मुलायम स्वर में भइया से कहा, 'एक बार नाड़ी देखनी होगी।' मैंने रेशमी फर्द में से अपना थका हुआ गोलमटोल गोरा हाथ निकाल दिया। एक बार हाथ को निहार-कर देखा, उसमें अगर नीले रंग की कांच की चूड़ियां पहने होती तो वह और भी अच्छा लगता। रोगी का हाथ थामकर नाड़ी देखने में डाक्टर की ऐसी चंचलता मैंने पहले कभी नहीं देखी। उन्होंने, छूने से डरती और कांपती हुई उंगलियों से, मेरी नाड़ी देखी। वे मेरे बुखार की गरमी समझ गए और मैंने भी उनकी अन्तर की नाड़ी कैसी चल रही है, इसका कुछ-कुछ आभास पाया।—क्यों, विश्वास नहीं होता?"

मैंने कहा, "अविश्वास का तो कोई कारण नहीं देखता। आदमी की नाड़ी हर वक्त एक-सी नहीं चलती।"

वह कहने लगी, "हूं! क्रमश: और भी दो-चार बार रोगी और आरोग्य होने के बाद एक दिन मैंने देखा कि मेरी संध्याकालीन की मानस सभा में संसार के करोड़ों पुरुषों की संख्या घटते-घटते अन्त में वह 'एक' पर आकर ठहर गई। मेरी दुनिया करीब-करीब सूनी-सी हो गई। संसार में सिर्फ एक डाक्टर और एक रोगी बच रहा।

"शाम होते ही मैं चुपके से उठकर बसन्ती रंग की साड़ी पहनती, अच्छी तरह जूड़ा बांधती, उसपर एक बेले की माला लपेटती, और फिर एक दर्पण लेकर बगीचे में जा बैठती। क्यों? अपने को देख-देखकर क्या तृप्ति नहीं होती थी? सचमुच नहीं होती थी। क्योंकि मैं तो खुद अपने को नहीं देखती, मैं तब अकेली बैठकर दो हो जाती। मैं तब डाक्टर बनकर अपने को खूब निहार-निहारकर देखती देखकर मोहित हो जाती, खूब प्रेम करती, लाड़-प्यार फिर भी हृदय के भीतर गहरी सांस उठ-उठकर शाम

तरह सायं-सायं करके हाहाकार कर उठती।

"तब से मैं अकेली नहीं रही, जब चलती तो नीचे को निगाह कर निरख-निरख के देखती कि पैरों की उंगलियां ज़मीन पर कैसे पड़ती हैं, और सोचती, इन पैरों का रखना हमारे नवीन परीक्षोत्तीर्ण डाक्टर को कैसा लगता होगा ! खिड़की के बाहर दोपहरी धांय-धांय करती रहती, एक तरह का गरम सन्नाटा छा जाता, कहीं भी कोई शोर-गुल नहीं, बीच-बीच में एक-आध चील बहुत दूर आकाश में चींचीं करती हुई उड़ जाती, और हमारे बगीचे की चहारदीवारी के बाहर खिलौने वाला गाने के स्वर में 'चहिए खिलौना चहिए, चूड़ी चहिए' बोल जाता। मैं तब अपने हाथ से बिछौना करके उसपर एक धुली हुई सफेद महीन चादर बिछाकर सो जाती, और अपनी एक उघड़ी हुई बांह को कोमल बिछौने पर अनादर से रखकर सोचती, इस हाथ को इस ढंग से रखते हुए मानो किसीने देख लिया, मानो किसीने दोनों हाथों से उसे उठा लिया, मानो किसीने उसकी गुलाबी हथेली पर चुम्बन रख दिया, और मानो धीरे-धीरे वह लौटा जा रहा है।—हो, मान लो, यहीं पर कहानी खत्म हो जाए तो कैसा रहे ?"

मैंने कहा, "अच्छा ही रहे। ज़रा अधूरी तो रह जाएगी, पर मन ही मन पूरी करने में बाकी की रात मज़े में कट जाएगी।"

उसने कहा, "हूं ! किन्तु, इससे कहानी बहुत गम्भीर हो जाएगी। इसका मज़ाक फिर कहां रहेगा ? इसके भीतर का 'कंकाल' अपने सारे दांत किटकिटाता हुआ कहां दिखाई देगा ?

"हां, फिर उसके बाद सुनो। ज़रा प्रैक्टिस बढ़ते ही डाक्टर ने हमारे मकान के नीचे एक दवाखाना खोल दिया। तब फिर मैं उनसे हंसी-हंसी में कभी दवा की बात, कभी ज़हर की बात, कभी आदमी आसानी से कैसे मर सकता है, यही सब ऊटपटांग बातें पूछती रहती। डाक्टरी विषयों में डाक्टर का मुंह खुल जाता। सुनते-सुनते मौत मानो परिचित घर के आदमी की तरह हो गई। फिर तो मुझे सिर्फ दो ही

चीजें दुनिया में दीखने लगी, प्यार और मौत।—सुनो, मेरी कहानी अब करीब-करीब खतम हो चली है, अब ज्यादा देर नहीं है।"

मैंने मुलायम स्वर में कहा, "रात भी करीब-करीब खतम हो आई।"

वह कहने लगी, "हां तो, कुछ दिनों से देखा कि डाक्टर साहब बड़े अनमने-से रहने लगे हैं, और मेरे सामने तो बहुत ही झेंपते हैं। एक दिन देखा कि वे कुछ ज्यादा ठाट-बाट से सज-धजकर भइया के पास आए और उनसे बग्घी मांगने लगे। रात को कहीं जाएंगे। मुझसे रहा न गया। भइया के पास जाकर बातों ही बातों में मैंने पूछा, 'भइया, डाक्टर आज बग्घी लेकर कहां जा रहे हैं?' संक्षेप में भइया ने कहा, 'मरने।' मैंने कहा, 'बताओ न, भइया?' उन्होंने पहले की अपेक्षा कुछ और खुलासा करके कहा, 'ब्याह करने।' मैंने कहा, 'सचमुच?' और खूब हंसने लगी।

"धीरे-धीरे मालूम हुआ कि इस ब्याह में डाक्टर को बारह हज़ार रुपये मिलेंगे। किन्तु, मुझसे यह बात छिपाकर मुझे अपमानित करने के क्या मानी? मैंने क्या उनके पैरों पड़कर कहा था कि ऐसा काम करने से मैं छाती फाड़कर मर जाऊंगी? पुरुषों का विश्वास नहीं। दुनिया में मैंने सिर्फ एक ही पुरुष देखा है; और एक ही क्षण में उस के बारे में पूरी जानकारी हासिल कर ली है।

"डाक्टर रोगियों को देखकर जब घर लौट आए, तो मैंने खिल-खिलाकर खूब हंसते-हंसते कहा, 'क्यों डाक्टर साहब, मैंने सुना है कि आज आपका ब्याह होनेवाला है?' मेरी हंसी देखकर डाक्टर सिर्फ झेंप ही नहीं, बल्कि उनका चेहरा फक पड़ गया। मैंने पूछा, 'बाजे-बाजे कुछ नहीं बुलाए?' सुनकर उन्होंने एक लम्बी सांस ली, और बोले, 'ब्याह क्या इतने आनन्द की चीज है?' हंसते-हंसते मैं लोट-पोट हो गई। ऐसी बात तो पहले कभी नहीं सुनी थी। मैंने कहा, 'सो नहीं होगा, बाजे होने चाहिए, रोशनी होनी चाहिए, पूरा-पूरा

ठाट-वाट होना चाहिए।' इसके वाद भइया को मैंने ऐसा परेशान कर डाला कि भइया उसी वक्त धूमधाम से वारात निकालने की तैयारी में लग गए।

"मैं वार-वार एक ही वात छेड़ने लगी कि वहू के घर आने पर क्या होगा, मैं क्या करूंगी ? डाक्टर से मैं पूछ वैठी, 'अच्छा, डाक्टर साहव, तव भी क्या आप इसी तरह रोगियों की नाड़ी मसकते फिरेंगे ?' हिः हिः हिःहिः ! यद्यपि मनुष्य का, और खासकर पुरुष का मन दिखाई नहीं देता, फिर भी मैं सौगन्ध खाकर कह सकती हूं कि मेरी वात डाक्टर की छाती में कांटे की तरह चुभकर रह गई।

"वहुत रात वीते लग्न था। शाम के वक्त डाक्टर छत पर वैठे भइया के साथ दो-एक गिलास शराव पी रहे थे। दोनों जने इस काम में कुछ-कुछ अभ्यस्त थे। धीरे-धीरे आकाश में चांद उदय होने लगा। मैं हंसती हुई ऊपर पहुंची, वोली, 'डाक्टर साहव, भूल गए क्या ? चलने का वक्त हो गया !'

"एक वात मैं कहना भूल गई। इस वीच में छिपकर दवाखाने में ..र मैं थोड़ा-सा सफेद चूरा ले आई थी। छत पर पहुंचते ही दोनों निगाह वचाकर मैंने उसे डाक्टर के गिलास में मिला दिया। फिस चूरे के खाने से आदमी मर जाता है, यह डाक्टर से ही सीख लिया था।

"डाक्टर ने एक सांस में पूरा गिलास खाली करके मेरे मुंह की तरफ मर्मान्तिक दृष्टि डालकर भीजे हुए गद्गद कंठ से कहा, 'अच्छा तो अव चलता हूं !'

"शहनाई वजने लगी। नीचे उतरकर मैंने एक वनारसी साड़ी पहनी, और जितने भी गहने मेरे संदूक में वन्द रखे थे, सव के सव निकालकर पहन लिए। मांग में खूव अच्छी तरह सिन्दूर भर लिया; और फिर अपने उसी मौलसिरी के पेड़ के नीचे विछौना विछाकर लेट रही। वड़ी सुहावनी रात थी। सफेद चांदनी छिटक रही थी।

सोती हुई दुनिया की थकावट दूर करती हुई दक्षिणी हवा चल रही थी। मौलसिरी और बेला की सुगन्ध से सारा बगीचा महक रहा था।

"शहनाई की तान क्रमशः जब दूर होती चली गई, चांदनी जब अंधकार का रूप धारण करने लगी, मेरा वह मौलसिरी का पेड़, बगीचा, ऊपर का आकाश, नीचे का मेरा वह आजन्म काल का घर-द्वार सब कुछ को लेकर दुनिया जब मेरे चारों तरफ से माया की तरह बिलाने लगी, तब मैं आंखें मींचकर हंसने लगी। इच्छा थी, जब लोग मुझे आकर देखें, तो मेरी वह हंसी रंगीन नशे की तरह मेरे ओठों पर ज्यों की त्यों लगी रहे। इच्छा थी, अपनी उस हंसी को यहां से मैं अपने साथ ही लेती जाऊं; और वहां जब मैं अपने अभिसार की सुहाग-कुटीर में धीरे-धीरे प्रवेश करूं तब तक वह ज्यों की त्यों बनी रहे।

"पर कहां गई मेरी वह सुहाग-कुटीर! कहां गया मेरा वह अभिसार का रंगीन मनोहर वेश! अपने भीतर से एक खटखट की आवाज़ सुनकर मैं जाग गई। देखा तो, मुझे लेकर तीन लड़के अस्थि-विद्या सीख रहे हैं! छाती के भीतर जहां सुख:दुख धुक-धुक करता रहता था और एक-एक करके प्रतिदिन जहां यौवन की कलियां खिला करती थी, वहां, वहां बेंत दिखा-दिखाकर किस हड्डी का क्या नाम है, यह सीखा जा रहा है!

"सुनो, मैंने जो अपने सम्पूर्ण हृदय-मन को निचोड़कर अपने उन ओठों पर अन्तिम हंसी खिलाई थी, उसका कोई चिह्न तुम्हें दिखाई दिया था क्या?

"कहानी कैसी लगी?"

मैंने कहा, "बड़े मजे की।"

इतने में कौआ बोल उठा।

मैंने पूछा, "अभी हो क्या?"

कोई जवाब नहीं मिला।

घर में प्रभात का प्रकाश चमक उठा।

ठाट-वाट होना चाहिए।' उसके दाद भइया को मैंने ऐसा परेशान कर डाला कि भइया उसी वक्त धूमधाम से बारात निकालने की तैयारी में लग गए।

"मैं बार-बार एक ही बात छेड़ने लगी कि वहू के घर आने पर क्या होगा, मैं क्या करूंगी ? डाक्टर से मैं पूछ बैठी, 'अच्छा, डाक्टर साहब, तब भी क्या आप इसी तरह रोगियों की नाड़ी मसकते फिरेंगे ?' हि: हि: हि:हि: ! यद्यपि मनुष्य का, और खासकर पुरुष का मन दिखाई नहीं देता, फिर भी मैं सौगन्ध खाकर कह सकती हूं कि मेरी बात डाक्टर की छाती में कांटे की तरह चुभकर रह गई।

"बहुत रात बीते लग्न था। शाम के वक्त डाक्टर छत पर बैठे भइया के साथ दो-एक गिलास शराब पी रहे थे। दोनों जने इस काम में कुछ-कुछ अभ्यस्त थे। धीरे-धीरे आकाश में चांद उदय होने लगा। मैं हंसती हुई ऊपर पहुंची, बोली, 'डाक्टर साहब, भूल गए क्या ? चलने का वक्त हो गया !'

"एक बात मैं कहना भूल गई। इस बीच में छिपकर दवाखाने में ...र मैं थोड़ा-सा सफेद बूरा ले आई थी। छत पर पहुंचते ही दोनों ... निगाह बचाकर मैंने उसे डाक्टर के गिलास में मिला दिया। फिर बूरे के खाने से आदमी मर जाता है, यह डाक्टर से ही सीख लिया था।

"डाक्टर ने एक सांस में पूरा गिलास खाली करके मेरे मुंह की तरफ मर्मान्तक दृष्टि डालकर भीजे हुए गद्‌गद कंठ से कहा, 'अच्छा तो अब चलता हूं !'

"शहनाई बजने लगी। नीचे उतरकर मैंने एक बनारसी साड़ी पहनी, और जितने भी गहने मेरे संदूक में बन्द रखे थे, सब के सब निकालकर पहन लिए। मांग में खूब अच्छी तरह सिन्दूर भर लिया; और फिर अपने उसी मौलसिरी के पेड़ के नीचे बिछौना बिछाकर लेट रही। बड़ी सुहावनी रात थी। सफेद चांदनी छिटक रही थी।

सोती हुई दुनिया की थकावट दूर करती हुई दक्षिणी हवा चल रही थी। मौलसिरी और बेला की सुगन्ध से सारा बगीचा महक रहा था।

"शहनाई की तान क्रमशः जब दूर होती चली गई, चांदनी जब अंधकार का रूप धारण करने लगी, मेरा वह मौलसिरी का पेड़, बगीचा, ऊपर का आकाश, नीचे का मेरा वह आजन्म काल का घर-द्वार सब कुछ को लेकर दुनिया जब मेरे चारों तरफ से माया की तरह विलाने लगी, तब मैं आखें मींचकर हंसने लगी। इच्छा थी, जब लोग मुझे आकर देखें, तो मेरी वह हंसी रंगीन नशे की तरह मेरे ओठों पर ज्यों की त्यों लगी रहे। इच्छा थी, अपनी उस हंसी को यहां से मैं अपने साथ ही लेती जाऊं; और वहां जब मैं अपने अभिसार की सुहाग-कुटीर में धीरे-धीरे प्रवेश करूं तब तक वह ज्यों की त्यों बनी रहे।

"पर कहां गई मेरी वह सुहाग-कुटीर! कहां गया मेरा वह अभिसार का रंगीन मनोहर वेश! अपने भीतर से एक खटखट की आवाज सुनकर मैं जाग गई। देखा तो, मुझे लेकर तीन लड़के अस्थि-विद्या सीख रहे हैं! छाती के भीतर जहां सुख-दुख धुक-धुक करता रहता था और एक-एक करके प्रतिदिन जहां यौवन की कलियां खिला करती थीं, वहां, वहां बेंत दिखा-दिखाकर किस हड्डी का क्या नाम है, यह सीखा जा रहा है!

"सुनो, मैंने जो अपने सम्पूर्ण हृदय-मन को निचोड़कर अपने उन ओठों पर अन्तिम हंसी खिलाई थी, उसका कोई चिह्न तुम्हें दिखाई दिया था क्या?

"कहानी कैसी लगी?"

मैंने कहा, "बड़े मजे की।"

इतने में कौआ बोल उठा।

मैंने पूछा, "अभी हो क्या?"

कोई जवाब नहीं मिला।

घर में प्रभात का प्रकाश चमक उ

ठाट-वाट होना चाहिए।' उसके दाद भइया को मैंने ऐसा परेशान कर डाला कि भइया उसी वक्त धूमधाम से वारात निकालने की तैयारी में लग गए।

"मैं वार-वार एक ही वात छेड़ने लगी कि वहू के घर आने पर क्या होगा, मैं क्या करूंगी ? डाक्टर से मैं पूछ वैठी, 'अच्छा, डाक्टर साहव, तव भी क्या आप इसी तरह रोगियों की नाड़ी मसकते फिरेंगे ?' हिः हिः हिःहिः ! यद्यपि मनुष्य का, और खासकर पुरुष का मन दिखाई नहीं देता, फिर भी मैं सौगन्ध खाकर कह सकती हूं कि मेरी वात डाक्टर की छाती में कांटे की तरह चुभकर रह गई।

"वहुत रात वीते लग्न था। शाम के वक्त डाक्टर छत पर बैठे भइया के साथ दो-एक गिलास शराव पी रहे थे। दोनों जने इस काम में कुछ-कुछ अभ्यस्त थे। धीरे-धीरे आकाश में चांद उदय होने लगा। मैं हंसती हुई ऊपर पहुंची, वोली, 'डाक्टर साहव, भूल गए क्या ? चलने का वक्त हो गया !'

"एक वात मैं कहना भूल गई। इस वीच में छिपकर दवाखाने में र मैं थोड़ा-सा सफेद चूरा ले आई थी। छत पर पहुंचते ही दोनों निगाह वचाकर मैंने उसे डाक्टर के गिलास में मिला दिया। फिस चूरे के खाने से आदमी मर जाता है, यह डाक्टर से ही सीख लिया था।

"डाक्टर ने एक सांस में पूरा गिलास खाली करके मेरे मुंह की तरफ मर्मान्तक दृष्टि डालकर भीजे हुए गद्गद कंठ से कहा, 'अच्छा तो अव चलता हूं !'

"शहनाई वजने लगी। नीचे उतरकर मैंने एक वनारसी साड़ी पहनी, और जितने भी गहने मेरे संदूक में वन्द रखे थे, सव के सव निकालकर पहन लिए। मांग में खूव अच्छी तरह सिन्दूर भर लिया; और फिर अपने उसी मौलसिरी के पेड़ के नीचे विछौना विछाकर लेट रही। वड़ी सुहावनी रात थी। सफेद चांदनी छिटक रही थी।

सोती हुई दुनिया की थकावट दूर करती हुई दखिनी हवा चल रही थी। मौलसिरी और बेला की सुगन्ध से सारा बगीचा महक रहा था।

"शहनाई की तान क्रमशः जब दूर होती चली गई, चांदनी जब अंधकार का रूप धारण करने लगी, मेरा वह मौलसिरी का पेड़, बगीचा, ऊपर का आकाश, नीचे का मेरा वह आजन्म काल का घर-द्वार सब कुछ को लेकर दुनिया जब मेरे चारों तरफ से माया की तरह विलाने लगी, तब मैं आंखें मींचकर हंसने लगी। इच्छा थी, जब लोग मुझे आकर देखें, तो मेरी वह हंसी रंगीन मदो की तरह मेरे ओठों पर ज्यों की त्यों लगी रहे। इच्छा थी, अपनी उस हंसी को यहां से मैं अपने साथ ही लेती जाऊं; और वहां जब मैं अपने अभिसार को सुहाग-कुटीर में धीरे-धीरे प्रवेश करूं तब तक वह ज्यों की त्यों बनी रहे।

"पर कहां गई मेरी वह सुहाग-कुटीर! कहां गया मेरा वह अभिसार का रंगीन मनोहर वेश! अपने भीतर से एक खटखट की आवाज सुनकर मैं जाग गई। देखा तो, मुझे लेकर तीन लड़के [illegible] विद्या मीच रहे हैं! छाती के भीतर जहां सुख-दुख धुक-धुक [illegible] रहता था और एक-एक करके प्रतिदिन जहां यौवन की [illegible] [illegible] करती थीं, वहां, वहां चोंच दिखा-दिखाकर विष [illegible] [illegible] यह सीखा जा रहा है!

"सुनो, मैंने जो अपने सम्पूर्ण हृदय-मन को [illegible] [illegible] ओठों पर अन्तिम हंसी खिलाई थी, उसका कोई चिह्न [illegible] [illegible] दिया था क्या?

"कहानी कैसी लगी?"

मैंने कहा, "बड़े मजे की।"

इतने में कौआ बोल उठा।

मैंने पूछा, "अभी हो क्या?"

कोई जवाब नहीं मिला।

घर में प्रभात का प्रकाश [illegible] [illegible],

स्वर्णमृग

आदिनाथ और बैजनाथ चक्रवर्ती दोनों की शिरकत में ज़मींदारी है। इन दोनों में बैजनाथ की हालत कुछ खराब है। बैजनाथ के पिता महेशचन्द्र में सम्पत्ति की रक्षा करने या उसे बढ़ाने की बुद्धि ज़रा भी नहीं थी। वे अपने बड़े भाई शिवनाथ पर ही पूरा भरोसा रखते थे। शिवनाथ ने छोटे भाई महेशचन्द्र को स्नेह के खूब दम-झांसे दिए, और उसके बदले में उनकी तमाम जायदाद हड़प ली। महेशचन्द्र के पास सिर्फ-थोड़े से प्रॉमेसरी नोट बच रहे। बैजनाथ को अपने जीवन-समुद्र में अब केवल उन्हीं थोड़े-से सरकारी कागज़ों की नाव का सहारा है।

शिवनाथ ने बड़ी खोज के साथ एक बड़े आदमी की इकलौती लड़की के साथ अपने पुत्र आदिनाथ का ब्याह कर दिया; और इस तरह वे सम्पत्ति-वृद्धि का एक रास्ता छोड़ गए। और महेशचन्द्र ने सात-सात लड़कियों के बोझ से दबे हुए एक गरीब ब्राह्मण पर दया करके दहेज में एक भी पैसा न लेकर उसकी बड़ी लड़की के साथ अपने पुत्र का ब्याह कर दिया। समधी की सातों लड़कियों को वे इसलिए अपने घर न ला सके कि उनके केवल एक ही लड़का था; और उस ब्राह्मण ने भी कोई विशेष आग्रह नहीं किया। किन्तु फिर भी, सुनते हैं कि बाकी छ लड़कियों के ब्याह के लिए समधी को उन्होंने अपने बूते से ज्यादा रुपये-पैसे से मदद दी थी।

पिता की मृत्यु के बाद बैजनाथ अपने प्रॉमिसरी नोटों को लेकर बिलकुल निश्चिन्त और सन्तोष के साथ जिन्दगी बिताने लगे। काम-धन्धे की बात उनके मन में आती ही न थी। काम उनका बस इतना ही था कि पेड़ की डाली काटकर बैठे-बैठे उसकी छड़ी बनाया करते। दुनिया-भर के बच्चे और नौजवान उनके पास आते और छड़ी के लिए उम्मीदवार रहते, और वे उन्हें छड़ी बना-बनाकर देते। इसके सिवा उदारता की उत्तेजना में मछली पकड़ने की छड़ी और पतंग उड़ाने की चरखी वगैरह बनाने में ही उनका काफी समय चला जाता। ऐसा कोई काम हाथ में आ जाए कि जिसमें बड़ी सावधानी से बहुत दिनों तक छीलने-घिसने की जरूरत हो और सांसारिक उपयोगिता को देखते हुए उसमें उतना वक्त बरबाद करना फिजूल मालूम हो, तो उनके उत्साह की हद न रहती।

अक्सर देखा जाता है कि मुहल्ले में जब दलबन्दी और षड्यन्त्र या साजिश के पीछे बड़े-बड़े पवित्र चण्डी-मण्डप और चौबारे धुआंधार हो उठते, तब बैजनाथ एक कलम-तराश चाकू और एक डाली हाथ में लिए, सवेरे से दोपहर तक और खाने-पीने के बाद शाम तक अपने चबूतरे पर अकेले अपनी धुन में मस्त बैठे रहते।

षष्ठीदेवी की कृपा से बैजनाथ के दो लड़के और एक लड़की पैदा हुई। किन्तु गृहिणी मोक्षदा सुन्दरी का असन्तोष दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। उन्हें अफसोस है कि आदिनाथ के घर जैसा समारोह है, बैजनाथ के घर वैसा क्यों नहीं। उस घर की विन्ध्यवासिनी के जैसे और जितने गहने हैं, बनारसी और ढाके की जितनी साड़ियां हैं, उनके यहां बातचीत का जैसा ढंग और रहन-सहन का जैसा ठाट है, वैसा मोक्षदा के घर नहीं, इससे बढ़कर अन्याय की बात और क्या हो सकती है? और मजा यह कि एक ही खानदान है। कपट से भाई की जायदाद हड़पकर ही तो इतनी तरक्की की है उन लोगों ने! ज्यों-ज्यों ये बातें सुनती जाती, त्यों-त्यों मोक्षदा के हृदय में अपने

ससुर के इकलौते बेटे पर अश्रद्धा और अवज्ञा बढ़ती ही जाती। अपने घर में उन्हें कुछ भी नहीं सुहाता। सभी बातों में उन्हें अड़चन और मानहानि दिखाई देती। सोने की खटिया है सो भी ऐसी कि मुर्दा ले जाने की खाट से भी बदतर। जिसकी सात पीढ़ी में अपना कहने को कोई नहीं हो, ऐसा एक अनाथ चमगादड़ का बच्चा भी इस घर की टूटी-फूटी पुरानी दीवार से नहीं चिपटा रह सकता, और घर की सजावट देखकर तो महात्मा परमहंस की आंखों में भी पानी आ जाएगा। इन सब अत्युक्तियों का प्रतिवाद करना मरदों जैसी कायर जाति के लिए तो सम्भव ही नहीं, इसलिए वैजनाथ बाहर के चबूतरे पर दूनी लगन के साथ छड़ी छीलने में लग जाते।

किन्तु मौनव्रत विपत्ति की एकमात्र अमोघ औषधि नहीं है। किसी-किसी दिन पति के शिल्प-कार्य में विघ्न डालकर मोक्षदा उन्हें अन्तःपुर में बुलवा ही लेतीं; और अत्यन्त गम्भीरता से दूसरी ओर ताकती हुई कहतीं, "ग्वाले से कह दो, दूध बन्द कर दे।"

वैजनाथ सन्नाटे में आ जाते, और नम्रता से पूछते, "दूध बन्द करने से कैसे काम चलेगा? लड़के पीयेंगे क्या?"

गृहिणी उत्तर देतीं, "मांड़!"

किसी-किसी दिन इसके विपरीत भाव भी दिखाई देता, मोक्षदा पति को बुलाकर कहतीं, "मैं कुछ नहीं जानती—जो करना हो, तुम्हीं करो।"

वैजनाथ उदास होकर पूछते, "क्या करना है, बताओ भी?"

"कम से कम इस महीने का सामान तो ले आओ।"—कहकर गृहिणी ऐसी एक फेहरिस्त बनाकर देतीं कि जिससे राजसूय-यज्ञ भी समारोह के साथ सम्पन्न हो जाता।

वैजनाथ हिम्मत बांधकर पूछते भी कि "इतने का क्या होगा" तो उत्तर सुनते, "तो लड़कों को भूखों मरने दो, और मैं भी मर जाऊं, तब तुम अकेले रह जाना और खूब सस्ते में काम चलाना।"

इस तरह धीरे-धीरे यह बात वैजनाथ की समझ में आ गई कि अब छड़ी छीलने से काम नहीं चलेगा। पैसा पैदा करने का कोई रास्ता ढूंढ निकालना या रोजगार करना वैजनाथ के लिए दुराशा है ; लिहाजा, उन्होंने सोचा कि कुबेर के भण्डार में घुसने का कोई सुगम रास्ता ढूंढ निकालना ही इस संकट से बचने का एकमात्र उपाय है।

एक दिन रात को बिछौने पर पड़े-पड़े वे अत्यन्त दीनता से प्रार्थना करने लगे, 'हे माता जगदम्बे, स्वप्न में यदि किसी दुःसाध्य रोग की पेटेण्ट दवा बता दो, तो अखबारों में विज्ञापन लिखने का भार मैं ले लूं।'

उस रात को उन्होंने स्वप्न में देखा कि उनकी स्त्री उनपर नाराज़ होकर झट से विधवा-विवाह करने का प्रण कर बैठी हैं। 'अर्थाभाव होते हुए काफी गहने कहां मिलेंगे !' कहकर वैजनाथ उनकी प्रतिज्ञा का विरोध कर रहे हैं। 'विधवा को गहने की जरूरत नहीं'—कहकर पत्नी उसका खण्डन कर रही हैं। इसका मुंहतोड़ जवाब कुछ है जरूर, पर, उस समय उनके दिमाग में नहीं आया। इतने में नींद उचट गई, देखा तो सवेरा हो गया है, और तब झट से उनके दिमाग में आया कि क्यों उनकी स्त्री का विधवा-विवाह नहीं हो सकता, और इसके लिए वे कुछ दुखित भी हुए।

दूसरे दिन सवेरे नहा-निबटकर वैजनाथ अकेले बैठे पतंग में डोरा डाल रहे थे। इतने में एक सन्यासी ने आकर दरवाजे पर जयध्वनि की। संन्यासी को देखते ही बिजली की तरह वैजनाथ को भावी ऐश्वर्य की उज्ज्वल मूर्ति दिखाई दी। संन्यासी का बड़ा भारी आदर-सत्कार हुआ और अच्छे-अच्छे भोजनों से उसे तृप्त किया गया। बहुत साध्य-साधना के बाद मालूम कर सके कि संन्यासी सोना बना सकता है, और उस विद्या को दान करने में उन्हें कोई आपत्ति भी नहीं है।

गृहिणी भी मारे खुशी के नाच उठी। यकृत के विकार से जैसे

सब पीला ही पीला दिखाई देता है वैसे ही उन्हें तमाम दुनिया में सोना ही सोना दीखने लगा। कल्पना-शिल्पी द्वारा सोने का पलंग, घर का असवाव और दीवारों तक को सोने से मढ़कर मन ही मन उन्होंने विन्ध्यवासिनी को निमन्त्रण भी दे डाला।

संन्यासी रोज़ दो सेर दूध और डेढ़ सेर मोहनभोग उड़ाने लगा; और वैजनाथ के सरकारी कागज़ों को दुह-दुहकर उनसे मनमाना रौप्य-रस निकालना शुरू कर दिया।

छड़ी और चरखी के भूखे लड़कों का झुण्ड आता और वैजनाथ के दरवाज़े पर धमाधम घूंसा जमाकर लौट जाता। घर में लड़के-वाले वक्त पर खाना नहीं पाते। कोई गिरकर माथे पर गुमड़ा कर लेता तो कोई रो-रोकर ज़मीन-आसमान एक कर डालता, मां-वाप का उधर कुछ ध्यान ही नहीं। चुपचाप अग्नि-कुण्ड के सामने बैठे वे कड़ाहे की ओर इकटकी लगाए रहते, न आंखों के पलक गिरते और न मुंह से वात निकलती। ऐसा लगने लगा जैसे तृषित एकाग्र नेत्रों पर लगातार आग की लौ का प्रतिविम्व पड़ते रहने से उनकी आंखों की मणियों में मानो स्पर्शमणि के गुण आ गए हों।

दो-दो प्रॉमिसरी नोटों की उस अग्नि-कुण्ड में आहुति हो चुकने के वाद एक दिन संन्यासी ने आश्वासन मिला, "कल सोने में रंग आएगा।"

उस दिन रात को दोनों में से किसीको भी नींद नहीं आई। स्त्री-पुरुष मिलकर स्वर्णपुरी वनाने के काम में लग गए। इस विषय में कभी-कभी दोनों में मतभेद और वहस होने लगती, किन्तु, आनन्द के आवेग में उसकी मीमांसा होने में देर न लगती। परस्पर एक-दूसरे का खयाल रखकर अपने-अपने मत में कुछ-कुछ त्याग करने में किसीने कंजूसी नहीं की। सचमुच उस रात को दाम्पत्य-एकीकरण इतना अधिक घना हो गया था।

दूसरे दिन संन्यासी का पता ही नहीं! चारों तरफ से सोने का

रंग जाता रहा, सूर्य की किरणें तक अंधकारमय दीखने लगीं। उसके बाद फिर तो घर की खटिया, असबाव और दीवारें चौगुनी दरिद्रता और जीर्णता प्रगट करने लगी।

अब से घर के काम-काज के बारे में बैजनाथ कोई बात कहते तो गृहिणी बड़े तीव्र-मधुर स्वर में कहती, "बस, रहने दो, अक्लमन्दी काफी दिखा चुके हो, अब ज़रा कुछ दिन चुप बने रहो।"

बैजनाथ बेचारे एकदम मध्यम पड़ जाते।

मोक्षदा ने अब ऐसा श्रेष्ठता का भाव धारण कर लिया है कि मानो इस स्वर्ण-मरीचिका में उन्हें एक घड़ी के लिए भी शान्ति नहीं मिली।

अपराधी बैजनाथ स्त्री को खुश करने के लिए बहुत-से उपाय सोचने लगे। एक दिन वे एक चौखूटे कागज के बक्स में गुप्त उपहार लेकर स्त्री के पास पहुंचे। और खूब हंसकर बड़ी चतुराई के साथ सिर हिलाते हुए बोले, "क्या लाया हूं, बताओ तो?"

स्त्री ने कुतूहल को छिपाकर उदासीन भाव से कहा, "कैसे बताऊं, मैं कोई जादू तो जानती नहीं!"

बैजनाथ ने अनावश्यक समय नष्ट न करके पहले तो धीरे-धीरे उसकी गांठ खोली, उसके बाद फूंक मारकर कागज़ की धूल उड़ाई, फिर बड़ी सावधानी से एक-एक तह खोलकर ऊपर का कागज़ हटाकर आर्ट स्टूडियो की बनी हुई दश-महाविद्या की पंचरंगी तसवीर निकाली और उजाले की तरफ घुमाकर गृहिणी के सामने रख दी।

गृहिणी को उसी समय विन्ध्यावासिनी के खास कमरे में लगे हुए विलायती तैलचित्र की याद उठ आई, वे बहुत ही अवज्ञा के साथ बोलीं, "अहा, बलिहारी है! इसे तुम अपनी बैठक में ही लगा लेना, और बैठे-बैठे इसकी ओर देखा करना। मुझे इसकी ज़रूरत नहीं।"

बैजनाथ उदास हो गए, और समझ गए कि विधाता ने उन्हें और-और शक्तियों के साथ स्त्री को खुश रखने की शक्ति से भी वंचित रखा है।

ाव पीला ही पीला दिखाई देता है वैसे ही उन्हें तमाम दुनिया म ोना ही सोना दीखने लगा। कल्पना-शिल्पी द्वारा सोने का पलंग, घर का असवाव और दीवारों तक को सोने से मढ़कर मन ही मन उन्होंने विन्ध्यवासिनी को निमन्त्रण भी दे डाला।

संन्यासी रोज़ दो सेर दूध और डेढ़ सेर मोहनभोग उड़ाने लगा; और वैजनाथ के सरकारी कागजों को दुह-दुहकर उनसे मनमाना रौप्य-रस निकालना शुरू कर दिया।

छड़ी और चरखी के भूखे लड़कों का झुण्ड आता और वैजनाथ के दरवाज़े पर धमाधम घूंसा जमाकर लौट जाता। घर में लड़के-वाले वक्त पर खाना नहीं पाते। कोई गिरकर माथे पर गुमड़ा कर लेता तो कोई रो-रोकर जमीन-आसमान एक कर डालता, मां-बाप का उधर कुछ ध्यान ही नहीं। चुपचाप अग्नि-कुण्ड के सामने बैठे वे कड़ाहे की ओर इकटकी लगाए रहते, न आंखों के पलक गिरते और न मुंह से बात निकलती। ऐसा लगने लगा जैसे तृषित एकाग्र नेत्रों पर लगातार आग की लौ का प्रतिबिम्ब पड़ते रहने से उनकी आंखों की मणियों में मानो स्पर्शमणि के गुण आ गए हों।

दो-दो प्रॉमिसरी नोटों की उस अग्नि-कुण्ड में आहुति हो चुकने के बाद एक दिन संन्यासी ने आश्वासन मिला, "कल सोने में रंग आएगा।"

उस दिन रात को दोनों में से किसीको भी नींद नहीं आई स्त्री-पुरुष मिलकर स्वर्णपुरी बनाने के काम में लग गए। इस विष में कभी-कभी दोनों में मतभेद और बहस होने लगती, किन्तु, आन के आवेग में उसकी मीमांसा होने में देर न लगती। परस्पर ए दूसरे का खयाल रखकर अपने-अपने मत में कुछ-कुछ त्याग करने किसीने कंजूसी नहीं की। सचमुच उस रात को दाम्पत्य-एकीक इतना अधिक घना हो गया था।

दूसरे दिन संन्यासी का पता ही नहीं! चारों तरफ से सोने

रंग जाता रहा, सूर्य की किरणें तक अंधकारमय दीखने लगीं। उसके बाद फिर तो घर की खटिया, असबाब और दीवारें चौगुनी दरिद्रता और जीर्णता प्रगट करने लगीं।

अब से घर के काम-काज के बारे में बैजनाथ कोई बात कहते तो गृहिणी बड़े तीव्र-मधुर स्वर में कहती, "बस, रहने दो, अक्लमन्दी काफी दिखा चुके हो, अब जरा कुछ दिन चुप बने रहो।"

बैजनाथ बेचारे एकदम मध्यम पड़ जाते।

मोक्षदा ने अब ऐसा श्रेष्ठता का भाव धारण कर लिया है कि मानो इस स्वर्ण-मरीचिका में उन्हें एक घड़ी के लिए भी शान्ति नहीं मिली।

अपराधी बैजनाथ स्त्री को खुश करने के लिए बहुत-से उपाय सोचने लगे। एक दिन वे एक चौखूटे कागज के बक्स में गुप्त उपहार लेकर स्त्री के पास पहुंचे। और खूब हंसकर बड़ी चतुराई के साथ सिर हिलाते हुए बोले, "क्या लाया हूं, बताओ तो?"

स्त्री ने कुतूहल को छिपाकर उदासीन भाव से कहा, "कैसे बताऊं, मैं कोई जादू तो जानती नहीं!"

बैजनाथ ने अनावश्यक समय नष्ट न करके पहले तो धीरे-धीरे उसकी गांठ खोली, उसके बाद फूंक मारकर कागज की धूल उड़ाई, फर बड़ी सावधानी से एक-एक तह खोलकर ऊपर का कागज हटाकर आर्ट स्टुडियो की बनी हुई दश-महाविद्या की पचरंगी तसवीर निकाली और उजाले की तरफ घुमाकर गृहिणी के सामने रख दी।

गृहिणी को उसी समय विन्ध्यावासिनी के खास कमरे में लगे हुए विलायती तैलचित्र की याद उठ आई, वे बहुत ही अवज्ञा के साथ बोलीं, "अहा, बलिहारी है! इसे तुम अपनी बैठक में ही लगा लेना, और बैठे-बैठे इसकी ओर देखा करना। मुझे इसकी जरूरत नहीं।"

बैजनाथ उदास हो गए, और समझ गए कि विधाता ने उन्हें और-और शक्तियों के साथ स्त्री को खुश रखने की शक्ति से भी वंचित रखा है।

इधर देश-भर में जितने ज्योतिषी मिले, मोक्षदा ने सबको हाथ दिखाया, और जन्मपत्री भी दिखाई। सभीने यही कहा कि वे सधवा अवस्था में मरेंगी। परन्तु उस परमानन्दमय परिणाम के लिए, वे वहुत व्यग्र न थीं, और इसलिए इससे भी उनका कुतूहल न मिटा।

अब की वार सुना कि 'उनका सन्तान-भाग्य अच्छा है, लड़के-लड़कियों से जल्द ही घर भर जाएगा।' सुनकर कोई खास खुशी नहीं जाहिर की।

अन्त में एक ज्योतिपी ने कहा, "एक साल के अन्दर अगर वैजनाथ को दैव-धन न मिल जाए, तो हम अपनी पोथी-पत्रा सव जला डालेंगे।"

ज्योतिपी की इस दृढ़ प्रतिज्ञा को सुनकर मोक्षदा के मन में अव रत्ती-भर भी अविश्वास न रह गया।

ज्योतिपी तो काफी भेंट-पूजा ले-लाकर विदा हो गए; पर, वैजनाथ का जीवन भार-स्वरूप हो गया। धन-उपार्जन के कुछ साधारण प्रचलित मार्ग हैं भी, जैसे खेती, नौकरी, व्यापार, चोरी और धोखेवाज़ी वगैरह-वगैरह, किन्तु दैव-धन उपार्जन का वैसा कोई निर्दिष्ट मार्ग नहीं है; और इसलिए, मोक्षदा वैजनाथ को ज्यों-ज्यों उत्साह देतीं और फटकार वतातीं त्यों-त्यों उन्हें किसी तरह कोई रास्ता नहीं सुझाई देता। कहां खोदना शुरू करें, किस तालाव में खोज कराने के लिए पनडुब्बों को तैनात करें, मकान की किस दीवार को तुड़वाएं, वे कुछ निर्णय नहीं कर पाए।

मोक्षदा ने वहुत ही नाराज़ होकर पति से कहा, "मरदों के माथे में मगज के वदले गोवर भरा रहता है, यह मैं पहले नहीं जानती थी।" फिर वोलीं, "ज़रा कहीं हिलो तो सही। ऊपर को मुंह वाए वैठे रहने से क्या आसमान से रुपये वरसेंगे?"

वात तो ठीक है, और वैजनाथ चाहते भी यही हैं, पर हिलें तो किस तरफ और कहां? कोई वताता भी तो नहीं, इसलिए चवूतरे पर

बैठकर वे फिर छड़ी छीलने लगे।

इधर आश्विन मास मे दुर्गा-पूजा नजदीक आ गई। चतुर्थी से नाव आ-आकर घाट पर लगने लगीं। प्रवासी लोग अपने देश को लौटने लगे। टोकनियों मे कुम्हड़ा, घुइयां, सूखे नारियल और टीन के बक्सों मे लड़कों के लिए जूते, छतरी, कपड़े, और प्रेयसियों के लिए एसेन्स, साबुन, सुगन्धित नारियल-तैल और नई-नई कहानियों की किताबें आ रही है।

शरत् की सूर्य-किरणें, उत्साह के हास्य की तरह, मेघमुक्त आकाश मे व्याप्त हो रही हैं, अधपके धान के खेत थर-थर काप रहे हैं, पेड़ों की वर्षा से धुली हुई सतेज हरी ही पत्तिया नये शीत की हवा से सिसकारियां भर रही है और चायना-टसर का कोट पहने, कधे पर इंठी हुई चादर लटकाए और सिर पर छतरी ताने परदेश से लौटते हुए पथिकगण खेत के रास्ते से घर की तरफ जा रहे हैं।

बैजनाथ बैठे-बैठे यही देखा करते, और उनके हृदय से लम्बी-लम्बी सासें निकलती रहती। वे अपने आनन्दशून्य घर के साथ बंगाल के हजारों घरों के मिलनोत्सव की तुलना करते और मन ही मन कहते, "विधाता ने मुझे ही क्यो ऐसा अकर्मण्य पैदा किया ?"

लड़के तड़के ही से उठकर प्रतिमा-निर्माण देखने के लिए आदिनाथ के घर आंगन मे जाकर बैठ गए। खाने का समय होने पर दासी उन्हें जबरदस्ती वहां से पकड़ लाई। वैजनाथ उस समय चबूतरे पर बैठे हुए आज के इस देशव्यापी उत्सव मे अपने जीवन की निष्फलता का स्मरण कर-करके दुखित हो रहे थे। दासी के हाथ से दोनो लडकों को छुड़ाकर और प्रेम से उन्हें अपनी गोद के पास खीचकर उन्होने बड़े लड़के से पूछा, "क्यों रे, अब की पूजा में तू क्या लेगा, बोल ?"

अविनाश ने उसी समय जवाब दिया, "एक नाव देना, बापूजी !"

छोटे लड़के ने भी सोचा कि बडे भइया से किसी विषय में कम रहना ठीक नही, वह बोला, "मुझे भी एक नाव देना, बापूजी !"

बाप के लायक लड़के हैं। एक निकम्मा शिल्प-कार्य मिल गया कि बाप धन्य हो गए। बाप ने कहा, "अच्छी बात है।"

इधर यथासमय पूजा की छुट्टी में काशी से मोक्षदा के एक चाचा घर लौटे। वे वकालत करते हैं। मोक्षदा ने कुछ दिनों तक उनके घर खूब जाना-आना जारी रखा।

आखिर एक दिन वे पति से आकर कहने लगीं, "सुनते हो, तुम्हें काशी जाना पड़ेगा।"

वैजनाथ को अचानक ऐसा लगा कि शायद उनका अब मृत्यु-समय आ पहुंचा है। जरूर किसी ज्योतिषी ने जन्मपत्री देखकर कहा होगा, इसीसे सहधर्मिणी उनकी सद्गति के लिए उद्योग कर रही हैं।

पीछे मालूम हुआ कि काशी में एक मकान है, वहां गुप्त-धन मिलेगा, और उस मकान को खरीदकर उसमें से धन ले आना होगा।

वैजनाथ ने कहा, "यह तो बड़ी आफत है। मैं काशी नहीं जा सकूंगा।"

वैजनाथ आज तक घर छोड़कर कभी कहीं बाहर नहीं गए। ।चीन शास्त्रकारों का कहना है कि गृहस्थ को किस तरह घर से निकाला जाता है, इस विषय में स्त्रियों को 'अशिक्षित-पटुत्व' होता है। मोक्षदा अपने मुंह की बातों से मानो घर में लाल मिर्च का धुआं भर देती थीं, पर उससे अभागा वैजनाथ सिर्फ आंसू ही बहाकर रह जाता, काशी जाने का नाम तक न लेता।

दो-तीन दिन इसी तरह बीत गए। वैजनाथ ने बैठे-बैठे कुछ लकड़ियों को काट-छांटकर और जोड़-जाड़कर दो खेलने की नावें बनाईं, उनमें मस्तूल बिठाए और कपड़ा काटकर पाल लगा दिए, लाल कपड़े की ध्वजा लगाई और पतवार वगैरह जहां की तहां बिठा दीं। एक गुड्डे को मल्लाह बनाया और यात्री भी बिठा दिए। गरज यह है कि उसमें उन्होंने काफी निपुणता का परिचय दिया। उन नावों को देखकर अपने मन को वश में रख सकें, ऐसे संयतचित्त बालक

बिरले ही मिलेंगे। इसलिए बैजनाथ ने सप्तमी के पहले छठ की रात को जब दोनों नावें दोनों लड़कों के हाथ में दीं तो वे मारे खुशी के नाचने लगे। एक खाली नाव ही काफी थी, उसपर लगे हुए ये पाल, मस्तूल, पतवार और मल्लाह वगैरह सब कुछ! यही उनके लिए बड़े भारी ताज्जुब की बात थी।

लड़कों की खुशी की धूम ने मां का ध्यान आकर्षित किया, और उन्होंने आकर अपनी आंखों से गरीब बाप का दिया हुआ 'पूजा का उपहार' पुत्रों के हाथ में देखा। देखकर मारे गुस्से के उन्हें रुलाई आ गई। अपनी तकदीर पर हाथ दे मारा; और लड़कों के हाथ से खिलौने छीनकर जंगले से बाहर फेंक दिए। 'सोने का हार तो दर-किनार रहा, साटन का कोट और जरीदार टोपी भी मिट गई! कैसा मनहूस आदमी है यह, दो खिलौने देकर खास अपने ही लड़कों को धोखा देने आया है, और उसमें भी कंजूस से गांठ से दो पैसे तक खर्च नहीं किए गए—अपने हाथ से बनाई हैं!'

छोटा लड़का जोर से रो उठा। "मूरख कहीं का"—कहते हुए मोक्षदा ने उसके गाल पर कसकर एक तमाचा जड़ दिया।

बड़ा लड़का बाप के मुंह की ओर देखकर अपना दुःख भूल गया; और ऊपरी खुशी दिखाता हुआ बोला, "बापूजी, मैं कल खूब सबेरे जाकर उठा लाऊंगा।"

बैजनाथ उसके दूसरे ही दिन काशी जाने को राजी हो गए। पर, रुपये कहां हैं? उनकी स्त्री ने जेवर बेचकर रुपये इकट्ठे किए। बैजनाथ की दादी के जमाने की चीजें थीं, ऐसा पक्का सोना और इतनी भारी चीजें आजकल तो देखने को भी न मिलेंगी।

जाते समय, बैजनाथ को ऐसा लगा कि जैसे वे मरने जा रहे हों! लड़कों को गोद में लेकर पुचकारा, खूब प्यार किया, और फिर आंखों में आंसू भरकर घर से निकल पड़े। तब मोक्षदा भी रोने लगीं।

काशी का मकान-मालिक वैजनाथ के ककिया ससुर का मुवक्किल था। और शायद इसीलिए मकान खूब ऊंचे दामों में विका। वैजनाथ उस मकान में अकेले ही रहने लगे। मकान विलकुल गंगा के किनारे पर है। गंगा की धारा उसकी नींव को धोती हुई वहती है।

रात को वैजनाथ के रोंगटे खड़े हो उठे। सूने मकान में सिरहाने के पास दीया जलाकर चद्दर ओढ़कर वे सो रहे, पर, नींद नहीं आई। आधी रात को जव तमाम शोर-गुल थम गया, तव कहीं से एक 'झनझन' की आवाज़ सुनकर वैजनाथ चौंक पड़े। आवाज़ वहुत धीमी, पर, सुनाई साफ देती है! मानो पाताल में वलि राजा के कोषाध्यक्ष अपने भण्डार में वैठे हुए रुपये गिन रहे हों।

वैजनाथ के मन में भय, कुतूहल और साथ ही अजेय आशा का भी संचार हुआ, कांपते हुए हाथ से दीया उठाकर वे सव कोठरियों में घूम आए। इस कोठरी में घुसते तो मालूम होता कि आवाज़ उस कोठरी से आ रही है, और उस कोठरी में जाते तो मालूम होता कि इस कोठरी से आ रही है। सारी रात इसी तरह इस कोठरी से उस कोठरी घूमते रहे। दिन में, रात का वह पातालभेदी शव्द अन्यान्य शव्दों के साथ मिल गया, फिर वह पहचानने में नहीं आया।

रात के जव दो-तीन पहर वीत चुके और दुनिया सो चुकी, तो फिर वह शव्द जाग उठा। वैजनाथ का चित्त वहुत ही व्याकुल हो उठा। शव्द का लक्ष्य ठीक करके किधर जाना चाहिए, उनसे कुछ स्थिर करते न वना। मानो मरुभूमि में पानी का कल्लोल सुनाई दे रहा है, किन्तु किधर से आ रहा है, कुछ निर्णय करते नहीं वनता। डर यह है कि कहीं गलत रास्ता पकड़ लिया और गुप्त झरना विलकुल अधिकार के वाहर चला गया तो? प्यासा पथिक जैसे चुपचाप खड़ा-खड़ा पानी के झरने की आवाज़ की तरफ वड़े गौर से कान लगाए रहता है और प्यास भी उत्तरोत्तर वढ़ती ही जाती है ठीक वही दशा वैजनाथ की हुई।

बहुत दिन अनिश्चित अवस्था में ही कट गए। सिर्फ अनिद्रा और वृथा आश्वासन से उनके सन्तोषपूर्ण मुंह पर व्यग्रता का तीव्र भाव ही रेखान्वित हो उठा। उनके भीतर धंसे हुए चकित नेत्रों में दोपहर की मरु बालुका की तरह एक ज्वाला दिखाई देने लगी।

अन्त में, एक दिन दोपहर को सब दरवाजे बन्द करके उन्होंने घर-भर में साबर ठकठकाना शुरू कर दिया। बगल की एक छोटी-सी कोठरी की जमीन पोली-सी मालूम दी।

आधी रात के करीब बैजनाथ अकेले बैठकर जमीन खोदने लगे। जब रात खतम होने को आई और पौ फटने लगी, तब कहीं गड्ढा पूरा खुद पाया।

उन्होंने देखा कि नीचे एक घर-सा बना हुआ है पर, रात के अंधेरे में उसमें बिना विचारे पैर डालने की उनकी हिम्मत न पड़ी। गड्ढे के ऊपर बिछौना बिछाकर पड़ रहे। पर, आवाज इतनी साफ-साफ सुनाई देने लगी कि डर के मारे उनसे वहां ठहरना मुश्किल हो गया। वहां से वे उठ आए, लेकिन, घर को यों ही सूना छोड़कर दूर जाने की भी उनकी प्रवृत्ति न हुई। लोभ और भय दोनों मिलकर उन्हें दोनों ओर से हाथ पकड़कर खींचने लगे। रात बीत गई।

आज तो दिन में भी आवाज सुनाई दे रही है। नौकर तक को उन्होंने घर के भीतर नहीं आने दिया, और खाना-पीना भी सब बाहर ही किया। खा-पीकर घर में घुसे और भीतर से ताला बन्द कर लिया।

दुर्गा नाम का जप करते हुए उन्होंने गड्ढे के मुंह पर से बिस्तर हटाकर अलग कर दिया। पानी की छपछप और धातु की टनटन आवाज बिलकुल साफ-साफ सुनाई देने लगी।

डरते-डरते गड्ढे के पास आहिस्ता से मुंह ले जाकर देखा, बहुत नीचे एक कोठरी-सी है, उसमें पानी का स्रोत चल रहा है। अंधेरे में और कुछ विशेष दिखाई नहीं दिया। फिर एक बड़ी लकड़ी डालकर

आज़माया, देखा कि पानी घुटनों से ज़्यादा नहीं है। एक दियासलाई और वत्ती लेकर उस कोठरी के अन्दर वे आसानी से कूद पड़े। क्षण-भर में कहीं सारी आशा ही न बुझ जाए, इसीलिए वत्ती जलाने में हाथ कांपने लगे। बहुत-सी दियासलाई नष्ट होने के बाद वत्ती जली। देखा की लोहे की मोटी ज़ंजीर से एक तांवे का बड़ा भारी घड़ा बंधा हुआ है, एक-एक वार स्रोत का पानी ज़ोर से आता है और ज़ंजीर घड़े पर पड़ती है और आवाज़ करती है।

वैजनाथ पानी पर छपछप शब्द करते हुए झटपट घड़े के पास जा पहुंचे। देखा तो, घड़ा खाली है!

फिर भी वे अपनी आंखों पर विश्वास न ला सके, दोनों हाथों से घड़ा उठाकर उसे खूब झकझोर डाला। भीतर कुछ भी न निकला। औंधा करके हिलाया, कुछ भी न गिरा। देखा तो, उसका गला उखड़ा हुआ है, मानो किसी समय इस घड़े का मुंह विलकुल वन्द था, किसीने तोड़ा है।

तव वैजनाथ पागल की तरह पानी के अन्दर दोनों हाथों से टटोलकर देखने लगे। कीचड़ में कोई चीज़ पड़ी-सी मालूम हुई, उठाकर देखा तो मुरदे की खोपड़ी निकली। उसे भी कानों के पास ले जाकर झकझोरा, भीतर कुछ न निकला। खोपड़ी उठाकर फेंक दी। वहुत देर तक ढूंढ़ते रहे, पर नर-कंकाल की हड्डियों के सिवा और कुछ भी हाथ न आया।

देखा, गंगा की तरफ दीवार में एक जगह सूराख-सा हो रहा है, उसमें से पानी आ रहा है। सम्भव है कि उनसे पहले के जिस आदमी की जन्मपत्री में दैव-धन की प्राप्ति की वात लिखी थी, वह शायद इसी छिद्र से घुसा होगा।

आखिर जव विलकुल हताश हो गए, तो 'अरी, मेरी मां' कहकर एक गहरी सांस ली, उसके जवाव में मानो अतीतकाल के और भी वहुत-से हताश व्यक्तियों की सांसें भीषण गम्भीरता से प्रतिध्वनि के

रूप में पाताल से गूंज उठी।

तमाम देह में पानी और कीचड़ लपेटे हुए बैजनाथ ऊपर आए। जनपूर्ण कोलाहलमय पृथ्वी उन्हें आदि से अन्त तक झूठी और उस ज़ंजीर से बंधे हुए घड़े की तरह सूनी मालूम देने लगी।

फिर सब चीज़-वस्त बांधनी पड़ेगी, टिकट खरीदना पड़ेगा, गाड़ी पर अपने अकर्मण्य जीवन-भार को फिर पहले की तरह ढोना पड़ेगा। तबीयत हुई कि नदी के कमज़ोर बालू के तट की तरह घट से वे टूट-कर पानी में गिर जाएं। पर, ऐसा न कर सके। फिर वही चीज़-वस्त बांधनी पड़ी, टिकट खरीदना पड़ा और गाड़ी पर भी चढ़ना पड़ा।

एक दिन शाम के वक्त वे घर के दरवाज़े पर जा पहुंचे। आश्विन मास में शरद-ऋतु के प्रातःकाल में दरवाज़े के पास बैठकर बैजनाथ ने अनेक प्रवासियों को घर लौटते देखा है और गहरी उसास लेकर मन ही मन वे विदेश से देश लौटने के इस सुख के लिए लालायित भी हुए हैं; किन्तु तब वे आज की इस सन्ध्या की स्वप्न में भी कल्पना न कर सकते थे।

घर में जाकर वे आंगन के तख्त पर निर्बोध की तरह बैठे रहे, भीतर नहीं गए। सबसे पहले महरी ने उन्हें देखा; और देखते ही शोर मचा दिया। लड़के दौड़े आए। गृहिणी ने उन्हें भीतर बुलवा भेजा।

बैजनाथ का मानो एक नशा-सा उतर गया। फिर मानो वे उसी पुरानी घर-गृहस्थी में सोते-सोते जाग उठे। मुंह पर मलिन हंसी लिए एक लड़के को गोद में लेकर और एक का हाथ पकड़कर भीतर पहुंचे। दीया जल चुका था। यद्यपि रात नहीं हुई थी, तो भी जाड़े की सन्ध्या में रात की तरह सन्नाटा छा गया था।

बैजनाथ पहले तो कुछ देर तक चुप रहे। फिर मृदु स्वर से स्त्री से पूछने लगे, "कहो, कैसे रही?"

स्त्री ने इसका कोई उत्तर न देकर पूछा, "क्या हुआ ?"

वैजनाथ ने कुछ जवाब न देकर तकदीर पर हाथ दे मारा मोक्षदा का मुंह अत्यन्त कठोर हो गया।

लड़के बेचारे किसी भारी अकल्याण की छाया देखकर धीरे से वहां से किनारा कर गए। महरी के पास जाकर बोले, "उस दिन वाली नाई की कहानी सुनाओ न!" और बिस्तर पर पड़ रहे।

इधर रात होने लगी, पर दोनों के मुंह से एक भी बात न निकली। घर के अन्दर न जाने कैसा एक सन्नाटा-सा छा गया; और मोक्षदा के ओठ क्रमशः वज्र की तरह कठोर होने लगे।

बहुत देर पीछे मोक्षदा बिना कुछ कहे-सुने ही उठकर अपने कमरे में चली गई, और भीतर से हुड़का लगा लिया।

वैजनाथ चुपचाप खड़े रहे। चौकीदार 'सोनेवाले होशियार' की आवाज़ लगाकर चला गया। थकी हुई दुनिया सुख की नींद सोती रही। किन्तु, अपने आत्मीय स्वजनों से लेकर अनन्त आकाश के नक्षत्र तक किसीने भी इस लाञ्छित निद्राहीन पुरुष से एक बात भी न की।

बहुत रात बीते, शायद किसी स्वप्न से जागकर, वैजनाथ के बड़े लड़के ने बिछौने से उठकर बरामदे में आकर पुकारा, "बापूजी!"

तब उसके बापूजी वहां नहीं थे। बालक ने और भी ज़रा ज़ोर से बन्द किवाड़ के बाहर से पुकारा, "बापूजी!" किन्तु कोई जवाब न मिला। फिर वह डरता-डरता बिछौने पर जाकर सो गया।

पहले की रीति के अनुसार महरी ने हुक्का भरकर वैजनाथ की तलाश की, पर वे कहीं भी दिखाई न दिए। दिन चढ़ने पर पड़ोसी लोग घर लौटे हुए पड़ोसी की खबर-सुध लेने आए, पर वैजनाथ के साथ किसीकी भी मुलाकात न हुई।

०००

स्त्री ने इसका कोई उत्तर न देकर पूछा, "क्या हुआ ?"

बैजनाथ ने कुछ जवाब न देकर तकदीर पर हाथ दे मारा। मोक्षदा का मुंह अत्यन्त कठोर हो गया।

लड़के बेचारे किसी भारी अकल्याण की छाया देखकर धीरे से वहां से किनारा कर गए। महरी के पास जाकर बोले, "उस दिन वाली नाई की कहानी सुनाओ न !" और विस्तर पर पड़ रहे।

इधर रात होने लगी, पर दोनों के मुंह से एक भी बात न निकली। घर के अन्दर न जाने कैसा एक सन्नाटा-सा छा गया; और मोक्षदा के ओठ क्रमशः वज्र की तरह कठोर होने लगे।

बहुत देर पीछे मोक्षदा बिना कुछ कहे-सुने ही उठकर अपने कमरे में चली गई, और भीतर से हुड़का लगा लिया।

बैजनाथ चुपचाप खड़े रहे। चौकीदार 'सोनेवाले होशियार' की आवाज़ लगाकर चला गया। थकी हुई दुनिया सुख की नींद सोती रही। किन्तु, अपने आत्मीय स्वजनों से लेकर अनन्त आकाश के नक्षत्र तक किसीने भी इस लाञ्छित निद्राहीन पुरुष से एक बात भी न की।

बहुत रात बीते, शायद किसी स्वप्न से जागकर, बैजनाथ के बड़े लड़के ने बिछौने से उठकर बरामदे में आकर पुकारा, "बापूजी !"

तब उसके बापूजी वहां नहीं थे। बालक ने और भी ज़रा ज़ोर से बन्द किवाड़ के बाहर से पुकारा, "बापूजी !" किन्तु कोई जवाब न मिला। फिर वह डरता-डरता बिछौने पर जाकर सो गया।

पहले की रीति के अनुसार महरी ने हुक्का भरकर बैजनाथ की तलाश की, पर वे कहीं भी दिखाई न दिए। दिन चढ़ने पर पड़ोसी लोग घर लौटे हुए पड़ोसी की खबर-सुध लेने आए, पर बैजनाथ के साथ किसीकी भी मुलाकात न हुई। ०००

मुद्रक : राष्ट्रीय प्रिंटिंग वर्क्स, विश्वासनगर, दिल्ली-३२ 1980

हमारे प्रकाशन

हिन्द पॉकेट बुक्स में देश-विदेश के सभी प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकें—उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, उर्दू शायरी, जासूसी, ज्ञान-विज्ञान, हास्य-व्यंग्य, स्वास्थ्य, स्त्रियोपयोगी और जीवनोपयोगी साहित्य सस्ते मूल्य में प्रकाशित किया जाता है। इन पुस्तकों की छपाई और गेट-अप बहुत सुन्दर होते हैं।

ये पुस्तकें भारत के सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं, समाचार-पत्र-विक्रेताओं, रेलवे बुक-स्टालों तथा रोडवेज बुक-स्टालों पर मिलती हैं। यदि आपको प्राप्त करने में कठिनाई हो तो सीधे हमें लिखें। दस रुपये की पुस्तकें एकसाथ मंगाने पर डाक-व्यय नहीं लिया जाता।

स्त्री ने इसका कोई उत्तर न देकर पूछा, "क्या हुआ ?"

वैजनाथ ने कुछ जवाव न देकर तकदीर पर हाथ दे मारा
मोक्षदा का मुंह अत्यन्त कठोर हो गया।

लड़के वेचारे किसी भारी अकल्याण की छाया देखकर धीरे
वहां से किनारा कर गए। महरी के पास जाकर वोले, "उस दि
वाली नाई की कहानी सुनाओ न !" और विस्तर पर पड़ रहे।

इधर रात होने लगी, पर दोनों के मुंह से एक भी वात न
निकली। घर के अन्दर न जाने कैसा एक सन्नाटा-सा छा गया
और मोक्षदा के ओठ क्रमशः वज्र की तरह कठोर होने लगे।

वहुत देर पीछे मोक्षदा विना कुछ कहे-सुने ही उठकर अपने कम
में चली गई, और भीतर से हुड़का लगा लिया।

वैजनाथ चुपचाप खड़े रहे। चौकीदार 'सोनेवाले होशियार' की
आवाज़ लगाकर चला गया। थकी हुई दुनिया सुख की नींद सोती
रही। किन्तु, अपने आत्मीय स्वजनों से लेकर अनन्त आकाश के नक्षत्र
तक किसीने भी इस लाञ्छित निद्राहीन पुरुष से एक वात भी न
की।

वहुत रात वीते, शायद किसी स्वप्न से जागकर, वैजनाथ के वड़े
लड़के ने विछौने से उठकर वरामदे में आकर पुकारा, "वापूजी !"

तव उसके वापूजी वहां नहीं थे। वालक ने और भी ज़रा ज़ोर से
वन्द किवाड़ के वाहर से पुकारा, "वापूजी !" किन्तु कोई जवाव न
मिला। फिर वह डरता-डरता विछौने पर जाकर सो गया।

पहले की रीति के अनुसार महरी ने हुक्का भरकर वैजनाथ की
तलाश की, पर वे कहीं भी दिखाई न दिए। दिन चढ़ने पर पड़ोसी
लोग घर लौटे हुए पड़ोसी की खवर-सुध लेने आए, पर वैजनाथ के
साथ किसीकी भी मुलाकात न हुई।

ooo

मुद्रक : राष्ट्रीय प्रिंटिंग वर्क्स, विश्वासनगर, दिल्ली-३२ 1980

तब और अब गुरुदत्त
जागृति ,,
अपने-पराये ,,
पड़ोसी ,,
सोमनाथ : आचार्य चतुरसेन
बुगला के पंख ,,
तूफान ,,
पथर युग के दो बुत ,,
वैशाली की नगरवधू ,,
निमंत्रण ,,
उदयास्त ,,
चट्टान ,,
ईदो ,,
दादा ,,
नीलमणि ,,
बासठ दिन : दत्त भारती
सजा ,,
सपने टूट गए ,,
गिरते दीवारें :
उपेन्द्रनाथ अश्क
प्रीत न जाने रीत ,,
सोने का पिंजरा ,,
जलावतन : अमृता प्रीतम
पिंजर ,,
पांच बरस लंबी सड़क ,,

तूफान की कलियां कृश्न च
सितारों से आगे ,,
नींद क्यों नहीं आती ,,
जब खेत जागे ,,
कार्निवाल ,,
कागज़ की नाव ,,
चांदी का घाव ,,
सफेद फूल ,,
दिल, दौलत और दुनिया ,,
एक वायलिन समंदर के किनारे
रेत का महल ,,
प्यासी धरती प्यासे लोग ,,
पराजय ,
सपनों की बांहें : ए०
डाक बंगला
पतझड़ के बाद ,,
मैं फिर आऊंगी ,,
पीला उदास चांद ,,
फूल उदास हैं ,,
तूफान की रात ,,
काले कोस : बलवन्त
बासी फूल ,,
सूना आसमानी ,,
सात समुंदर पार :
मुल्कराज आ